भारतीय लोक-कला-ग्रन्थावली, ग्रन्थ-संख्या ५

राजस्थान का लोक-संगीत

लेखक
देवीलाल सामर

सहायक
गींडाराम वर्मा

प्रकाशन विभाग
भारतीय लोक-कला मण्डल
रेजिडेन्सी भवन : जयपुर प्रिन्टर्स भवन
उदयपुर : जयपुर

भारतीय लोक-कला ग्रन्थावली

[भारत की विविध जनपदीय लोक-कलाओं जैसे नृत्य, संगीत, चित्र, अलंकरण, लोकगीत और लोक-जीवन आदि से सम्बन्धित; अधिकारी विद्वानों और कलाकारों द्वारा प्रस्तुत; अन्वेषण एवं अध्ययन-पूर्ण ग्रन्थ-प्रकाशन का अभिनव आयोजन ।]

सञ्चालक
देवीलाल सामर

•

सम्पादक
पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

ग्रन्थाङ्क ५

राजस्थान का लोक-संगीत

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य—तीन रुपया

प्रकाशन विभाग
भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर

मुद्रक—श्री सोहनलाल जैन, जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर

भूमिका

भारतीय लोक-कला मण्डल की प्रवृत्तियों में खोजविभाग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। प्रकाशन, फोटो-फिल्म तथा प्रदर्शन विभाग को सामग्री प्रदान करनेवाला यह खोज-विभाग ही है। मण्डल के प्रदर्शन विभाग द्वारा जो अनेक लोकनृत्य और लोकनाट्य आदि अब तक प्रस्तुत किये गये हैं, वे खोज-विभाग की ही देन हैं। इस विभाग के कार्यकर्त्ता अध्ययन तथा खोज के लिये विविध क्षेत्रों का दौरा करते हैं और लोक-कला की मूल्यवान सामग्री एकत्रित करते हैं। फोटो फिल्म विभाग के कर्मचारी उस सामग्री के मूर्तरूप को स्थिर और चलचित्रों द्वारा अङ्कित करते हैं, और लोकगीतों की प्रमुख ध्वनियों को, ध्वनि संकलन यंत्र द्वारा संकलित कर लेते हैं। अन्य विद्वान, लोकनृत्य, लोकनाट्य तथा लोकसंस्कृति संबंधी अध्ययन के लिये सामग्री संकलित करते हैं। इस सामग्री के आधार पर, प्रदर्शन विभाग के कलाकार लोकनृत्यों और लोकनाट्यों के कार्यक्रम तैयार कर उन्हें समस्त देश में प्रचारित करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की समस्त सामग्री इस विभाग द्वारा पिछले पांच वर्षों में एकत्रित की गई है और उसको अध्ययन और विश्लेषण द्वारा ग्रन्थ-बद्ध किया गया है। इस पुस्तक को विभाग के कार्यकर्ताओं का एक सम्मिलित प्रयास समझना चाहिये।

लोकगीतों की अनेक पुस्तकें हमारे देश में प्रकाशित हो चुकी हैं और कई विद्वानों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम किया है, परन्तु अभी तक लोक-गीतों के संगीत पक्ष को लेकर किसी ने विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक कार्य नहीं किया है। इस पुस्तक के लेखन द्वारा इस दिशा में एक विनम्र प्रयत्न किया गया है।

मुझे विश्वास है कि कला-मंडल के प्रयत्न से अवश्य ही इस क्षेत्र में नई दृष्टि मिलेगी और राजस्थान के बाहर अन्य राज्यों में भी गीतों का इस दृष्टि से अध्ययन किया जायगा।

भारतीय लोक-कला मण्डल उदयपुर,
होली पर्व, २०१३ वि०

—देवीलाल सामर

विगत—

भूमिका — पृष्ठ

प्रस्तावना

अध्याय १ ....
विषय-प्रवेश १–६

अध्याय २ ....
स्वर-सौन्दर्य ७–१९

अध्याय ३ ....
राजस्थानी लोक-संगीत के प्रकार २०–६६

अध्याय ४ ....
आदिवासियों के लोक-गीत ६७–७२

अध्याय ५ ....
पेशेवर लोकगीत-गायक और वादक जातियाँ ७३–८९

अध्याय ६ ....
राजस्थान के लोक-वाद्य ९०–१०४

परिशिष्ट ....
राजस्थानी लोकगीतों की कुछ स्वर-लिपियां १०५–१५२

भारतीय लोक-कला ग्रन्थावली

[भारत की विविध जनपदीय लोक-कलाओं जैसे नृत्य; संगीत, चित्र, अलंकरण, लोकगीत और लोक-जीवन आदि से सम्बन्धित; अधिकारी विद्वानों और कलाकारों द्वारा प्रस्तुत; अन्वेषण एवं अध्ययन-पूर्ण ग्रन्थ-प्रकाशन का अभिनव आयोजन ।]

सञ्चालक—देवीलाल सामर ● सम्पादक—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

प्रकाशित ग्रन्थ

१. **लोक-कला निबन्धावली, भाग—१ :** राजस्थानी लोक-कलाओं जैसे भवाई नृत्य, घूमर और झूमर, संझ्या, लोकनाटक-ख्याल, भूमि-अलंकरण आदि से सम्बन्धित अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत खोज और अध्ययनपूर्ण सामग्री। १८×२२/८ आकार के १२८ पृष्ठ। दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा कीजिये। मूल्य ३) रु.।

२. **लोक-कला निबन्धावली, भाग—२ :** मध्यभारतीय आदिवासियों, लोकगीतों, लोकवार्ताओं, लोक-अलंकरण-कलाओं, लोकोक्तियों, पहेलियों आदि से सम्बन्धित अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत खोज और अध्ययन-पूर्ण सामग्री। १८×२२/८ आकार के १३२ पृष्ठ। मूल्य ३) रुपया। अप्राप्य।

३. **लोक-कला निबन्धावली, भाग—३ :** राजस्थानी लोक-कलाओं, लोक-गीतों, लोकानुकृतियों आदि से सम्बन्धित अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत खोज और अध्ययन-पूर्ण सामग्री। १८×२२/८ आकार के ११० पृष्ठ। मूल्य ३) रुपया।

४. **राजस्थान के लोकानुरंजन :** राजस्थानी लोक-जीवन में प्रचलित नृत्य और अभिनय, आदि का खोज और अध्ययनपूर्ण सचित्र विवेचन। लेखक श्री देवीलाल सामर, सहायक श्री गींडाराम वर्मा। मूल्य डेढ़ रुपया।

५. **राजस्थान का लोक-संगीत :** राजस्थानी लोक-संगीत का खोज और अध्ययन पूर्ण विवेचन। लेखक सुप्रसिद्ध विद्वान और कलाकार श्री देवीलाल सामर, सहायक श्री गींडाराम वर्मा। १८×२२/८ आकार के १५२ पृष्ठ। मूल्य तीन रुपया।

६. **राजस्थानी लोक-नृत्य :** राजस्थानी लोक-नृत्यों का अध्ययनपूर्ण सचित्र विवेचन। लेखक-सुप्रसिद्ध विद्वान और कलाकार श्री देवीलाल सामर, सहायक श्री गींडाराम वर्मा। १८×२२/८ आकार के ५६+२० पृष्ठ। मूल्य दो रुपया।

७. **राजस्थानी लोक-नाट्य :** राजस्थान में प्रचलित लोक-नाटकों का अध्ययनपूर्ण विवेचन। लेखक-सुप्रसिद्ध विद्वान और कलाकार श्री देवीलाल सामर। सहायक श्री गींडाराम वर्मा। मूल्य दो रुपया।

८. **राजस्थानी लोकोत्सव :** राजस्थान में प्रचलित त्योहारों और उत्सवों का अध्ययन पूर्ण विवेचन। लेखक श्री गींडाराम वर्मा। मूल्य दो रुपया।

● लोक-कला त्रैमासिक के ग्राहक बनिये ●

प्रकाशन विभाग

भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर

भारतीय लोक-कला मण्डल उदयपुर की त्रैमासिक पत्रिका

लोक-कला

Journal of Bhartiya Lok-Kala Mandal, Udaipur.

सम्पादक-मण्डल

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल • देवीलाल सामर

पुरुषोत्तमलाल मेनारिया (प्रबन्ध सम्पादक)

लोक-कला अपने विषय की एक मात्र भारतीय पत्रिका है। पत्रिका में भारतीय लोक-कला सम्बन्धी खोज और अध्ययनपूर्ण सामग्री प्रकाशित की जाती है। पत्रिका के अब तक दस अंक प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से प्रारम्भ के चार अंक अप्राप्य हैं।

प्रति अंक का मूल्य—डेढ़ रुपया

वार्षिक मूल्य—६) रुपया

लोक-कला

प्रत्येक घर, स्कूल, कॉलेज, पुस्तकालय, वाचनालय और संस्था की शोभा है।

आज ही लिखिये—

प्रकाशन विभाग

भारतीय लोक-कला मण्डल

उदयपुर

प्रस्तावना

राजस्थानी चित्रकला अपनी उत्कृष्टता के कारण सारे संसार में परम आदरणीय स्थान प्राप्त कर चुकी है और राजस्थानी भाषा में लिखित साहित्य भी अपनी अनूठी भावाभिव्यंजना के कारण साहित्य-जगत में अद्वितीय माना गया है किन्तु भारतीय संगीत की राजस्थानी शैली की ओर अथवा भारतीय संगीत के विकास में दिये गये राजस्थान के योग की ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। विशेष खोज, संग्रह और अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संगीत के विकास में राजस्थान का महत्त्वपूर्ण योग है और राजस्थानी संगीत शैली का भी विकास हुआ है। राजस्थान में संगीत से सम्बन्धित जातियाँ बहुधा उपेक्षित रही, जिससे उपरोक्त तथ्य की ओर हमारा ध्यान नहीं गया।

राजस्थानी लोक-संगीत के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संगीत की उत्तरी शाखा का जन्मदाता और पोषक होने का श्रेय राजस्थान को जाता है। भारतीय संगीत के मूलाधार "सामवेद" का निर्माण भी भारतीय आर्यों की प्रारंभिक निवास-भूमि पश्चिमोत्तर भारत मुख्यतः राजस्थान में ही हुआ है, यह तथ्य सामवेद, राजस्थानी लोकगीत और राजस्थानी लोकसंगीत के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है। उत्तरी भारत की कई शास्त्रीय राग-रागिनियों के मूल रूप भी राजस्थानी लोक-संगीत में दृष्टिगत होते हैं और ऐसा ज्ञात होता है कि मूलतः राजस्थानी लोक-संगीत के आधार से ही भारतीय शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ है। भारतीय संगीत के पुनर्जागरण के लिये और जनता की रुचि के अनुसार भारतीय संगीत के विकास की मार्गदिशा निश्चित कर संसार में संमान्य स्थान प्राप्त करने के लिये राजस्थानी लोक-संगीत का आश्रय और अनुगमन परम श्रेयस्कर हो सकता है। इस कार्य के लिये राजस्थान में निर्मित प्रमुख संगीत-ग्रन्थों जैसे संगीतराज (महाराणा कुम्भा कृत), राधागोविन्द संगीतसार, रागकल्पद्रुम आदि से भी सहायता मिल सकती है।

भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् हमारे समाज और शासन की परिस्थिति परिवर्तित हो चुकी है। जिस प्रकार राजस्थान के साहित्यकारों

ने राजस्थान की गौरवमयी साहित्यिक परंपरा को समझते हुए भाषाई क्षेत्र में लादे गये साम्राज्यशाही जुए को उतार फेंका है और राष्ट्रीय नव निर्माण में अपनी जनता का नेतृत्व करते हुए राजस्थान में नवीन साहित्यिक जागरण का अभियान प्रारंभ किया है उसी प्रकार राजस्थान की दबी हुई और पिछड़ी हुई कलाकार जातियां भी अपने महत्त्व एवं अधिकारों के प्रति जागरूक दिखाई देती हैं। वास्तव में इन दीन, हीन और सर्वथा उपेक्षित कलाकार जातियों ने हमारी राष्ट्रीय निधि को अब तक सुरक्षित रक्खा है और अब इस निधि का मूल्यांकन करते हुए हमें भारतीय संगीत के विकास की उचित मार्गदिशा निश्चित करनी ही होगी।

सम्बन्धित सामग्री की खोज के उपरान्त विशेष अध्ययन और परिश्रम से यह "राजस्थान का लोक-संगीत" नामक ग्रन्थ लिखा गया है। प्रत्येक विषय पर बहुत संक्षेप में लिखा गया है और "गागर में सागर" भरने का प्रयत्न किया गया है। सम्बन्धित प्रत्येक विषय पर निकट भविष्य में ही भिन्न-भिन्न पुस्तकों में विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जावेगा।

राजस्थान के अतिरिक्त अन्य भारतीय जनपदों में भी लोक-संगीत सम्बन्धी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। लोक-संगीत की दृष्टि से राजस्थान, गुजरात, पंजाब, सिन्ध और महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में कई समानताएं हैं जिनके विशेष अध्ययन के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ में आवश्यक सामग्री प्राप्त होती है।

"राजस्थानी लोक-संगीत" विषयक प्रथम प्रयास के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक वास्तव में हमारी बधाई के पात्र हैं।

डूगड़ बिल्डिंग,
मि० इ० रोड, जयपुर
बसन्त पञ्चमी १९५७ ई०

—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

राजस्थान का लोक-संगीत

अध्याय १

विषय-प्रवेश

संसार के सभी देशों में लोकगीत पाये जाते हैं। जब से भाषा की उत्पत्ति हुई और मनुष्य थोड़ा सामाजिक एवं पारिवारिक बना तभी से इनका प्रादुर्भाव हुआ। भारतवर्ष के सभी राज्यों के लोकगीतों में भावों की दृष्टि से बहुत समानता है। भाषा का अंतर अवश्य है। जनसमुदाय के द्वारा गाये जाने वाले परंपरागत गीतों को हम लोकगीत कहेंगे। इनमें ग्रामगीत भी हैं और कसबों तथा शहरों में गाये जाने वाले गीत भी। शास्त्रीय संगीत भी लोकगीतों से ही बना है। जब इनमें जटिलता लाई गई और इनको दुरुह कर दिया गया तब शास्त्रीय संगीत बन गया। जिस प्रकार जनता की भाषा से ही साहित्यिक भाषा बन जाती है और वह वर्ग विशेष या सीमित लोगों की ही वस्तु बन जाती है उसी प्रकार लोकगीतों से ही शास्त्रीय संगीत बना। उदाहरणार्थ किसी जमाने में संस्कृत जनता की भाषा थी। समय पाकर पाली जनता की भाषा हो गई और संस्कृत पठित लोगों की रह गई। ऐसा ही लोकगीत और शास्त्रीय संगीत के साथ हुआ। लोकगीतों में भी वर्षों में जाकर थोड़े परिवर्तन हो जाते हैं। गायकी में भी अन्तर होता है। आदिम मानव का संगीत ऐसा नहीं था जैसा आज का लोक समुदाय गाता है। यदि हम आदिम जातियों के गीतों का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि वे राग-रागिनी और संगीत से काफ़ी दूर हैं। उनमें स्वर प्रसार कम है। फलस्वरूप उनमें कम ही स्वरों का प्रयोग होता है। इस प्रकार लोकगीतों के स्वरों में तथा उनकी धुनों में किंचित परिवर्तन वर्षों के बाद होता रहता है। जिस देश के लोकगीत बड़े आकर्षक और कलापूर्ण होंगे, उसका शास्त्रीय संगीत भी सम्पन्न और समृद्ध होगा। मद्रास राज्य के एक संगीतज्ञ का ऐसा मत है कि लोकगीत और शास्त्रीय संगीत एक दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं।

लोकगीतों के लक्षण और उनकी विशेषताएं

लोकगीत लोकसमुदाय की धराहेर हैं। लोकगीतों पर व्यक्ति विशेष की छाप नहीं रहती। यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक गीत का रचयिता अमुक व्यक्ति रहा है। ये पीढ़ी दर पीढ़ी अपनाये जाते हैं और इनको व्यक्ति अपना व्यक्तित्त्व देते रहते हैं। कालान्तर में व्यक्ति विशेष की छाप हट जाती है और वह समस्त लोक की सम्पत्ति हो जाती है। फिर समस्त लोक की आत्मा उसमें बोलती है। इस प्रकार सारे लोक का अपनत्त्व उसके साथ हो जाता है। उसमें मानवीय दुर्बलता के चिन्ह भी हम देखते हैं। जनमानस भोला होता है। वहां हृदय की सचाई है। किसी प्रकार का छल-कपट नहीं। वे यथार्थ के बहुत समीप हैं। उनमें अनुभूति रही है। उनके शब्द हृदयस्पर्शी होते हैं। वे अपनत्त्व और प्रेम को व्यक्त करते हैं। गुमानिया, पातळिया, रसिया, रंगीला, नोखीला, बादीला शब्द इस कथन की पुष्टि के प्रमाण हैं। इन गीतों के कथन में चमत्कार भी होता है किन्तु इनमें दिमाग और बुद्धि की कसरत नहीं की जाती। इनके रचयिता अलंकारों के पीछे नहीं पड़ते। इनमें कल्पना की काव्यात्मक उड़ानें नहीं होती। इनमें सीधा-सादापन होता है किन्तु भावों से ये लबालब भरे रहते हैं और हृदय को आंदोलित कर देने की इनमें अपार शक्ति होती है। लोकगीतों में प्रश्न और उत्तर भी मिलते हैं। इससे आकर्षण और जिज्ञासा बनी रहती है और सरलता भी बहुत आ जाती है। प्राचीन पुस्तकों में हम प्रश्न और उत्तर का ढंग देखते हैं। शंकराचार्य और स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी कृतियों में अपने आप प्रश्न उठाये हैं और उनका उत्तर भी दिया है। चूंकि लोक-जीवन बड़ा व्यापक होता है, लोकगीतों के विषय भी बहुत व्यापक रहे हैं। टीकी, झुमकड़ो, गोरबंद, कांगसियो, काजळियो, कूंजा, भूंज्ञा, मोगरा, केवड़ा, दड़ी (गेंद), पीपली, घूवरी पिलंगड़ी, बीछू आदि अनेकों विषय लोकगीतों के रहे हैं। आज की प्रयोगवादी कविता भी विस्तारक्षेत्र की दृष्टि से लोकगीतों का अनुसरण कर रही है। क्योंकि वह भी जीवन में प्रयुक्त नाना विषयों एवं वस्तुओं को अपना रही है। लोकगीतों में अधिकतर "स्थायी" ही चलती है। अंतरे का भी प्रयोग मिल जाता है पर कुछ ही गीतों में। कुछ गीतों में तो स्थायी में ही अंतरा रहता है। भारतीय लकगीतों में

समृद्धि का चित्रण बहुत अधिक मिलता है। यह शायद वैदिक साहित्य के प्रभाव के कारण है।[1] लोकजीवन आशा और उत्साह से भरा रहता है। समृद्धि के विचार से हमारे सामने हरदम उसका रूप एवं लक्ष्य रहता है। हम उसको प्राप्त करने की चेष्टा भी करते हैं। ऐश्वर्य से जीवन का बहुत बड़ा संबंध है। वह हम में साहस भरता है। सोना, चांदी, मोती, कीमती वेश का जगह-जगह उल्लेख हमारे गीतों में मिलता है। समंदर पार के मोती, गजमोती, कदली देश के हाथी, सिंधु देश के घोड़े की मनुहार एवं मांगें की जाती हैं। अलंकारों का चित्रण एवं स्त्रियों द्वारा उनके लिये विनती भी बहुत रहती है। सजावट सौन्दर्य और सौख्य देती है। इससे जीवन में सरसता एवं प्रसन्नता रहती है। कला तथा सौन्दर्य-प्रेम स्वाभाविक भी है। स्त्रियों के द्वारा गहनों की मांग की जाती है जो उनकी आभूषण-प्रियता एवं अलंकरण का नैसर्गिक परिचय देती है। प्रेम और यौवन के चित्रण भी गीतों में खूब मिलते हैं। लोकजीवन यौवन को पसंद करता है। उसमें रोमांस मिलता है, जो प्राकृतिक एवं सुखद है। आत्मीयता लोकगीतों का प्रमुख गुण है।

लोकजीवन उल्लास, आनन्द और उत्साह को बहुत पसन्द करता है, यह शुभ है। दुर्बलता प्रकट करने में वहां संकोच नहीं। लोकगीतों के पास भावुकता का अक्षय भंडार है। पारिवारिक एवं सामाजिक प्रेम लोकगीतों की अनुपम विशेषता है। राजस्थानी लोकगीतों में भाई-बहनों का प्रेम कम नहीं देखा जाता।

लोकगीतों का महत्त्व एवं उनकी उपयोगिता

यदि लोकजीवन से गीतों का अंश निकाल लिया जाये तो जीवन शून्य हो जाये। मनुष्य के लिये भावों की कसरत बड़ी जरूरी है, यदि न हुई अर्थात् भावों का आन्दोलन नहीं हुआ तो मनुष्य में प्रेम, सहानुभूति, सौहार्दता नहीं आ सकती। दया, ममता, संवेदना, सहयोग आदि दैवी गुण लोकगीतों की ही देन हैं। अन्यथा तो मनुष्य बड़ा क्रूर, निर्दय और कठोर हो जाय। यदि भावों का आन्दोलन नहीं होता है तो मनुष्य के मस्तिष्क में कई ग्रन्थियां बन जाती हैं। अंग्रेजी कवि टेनीसन

---

१. मराठी लेखक पंडित महादेव शास्त्री दिवेकर—वेदकालीन आर्य संस्कृति (दूसरा अध्याय.) आर्य-संस्कृति का उत्कर्ष अपकर्ष ।

ने 'होम दे ओट हर बेरियर डड' में यही दिखलाया है कि वात्सल्य के भावों के उमड़ाव ने उसको संज्ञा में ला दिया नहीं तो वह पागल हो जाती। लोकगीत यदि लुप्त हो जायें तो समाज में पागलों की संख्या बहुत बढ़ जाये। पंडित रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'कविता शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है'। लोकगीतों की सबसे बड़ी देन रागात्मक अंश है। यदि हमारे जीवन में रागात्मक अंश नहीं तो हमारा जीवन निरर्थक और बेकार है। हमें किसी भी चीज में आनन्द ही नहीं आवेगा और यह जगत हमारे लिये सूना-सूना रह जायगा। लोकगीत उस रागात्मक अंश को जागृत करते हैं और हमें समस्त संसार प्रिय और आनन्ददायक लगता है। नहीं तो हम निराश और दुखित हो जायँ। दुःख को ये लोकगीत बहुत हलका कर देते हैं। बेटी की विदाई पर लोकगीत उसके और परिवार के दुःख को कम कर देते हैं। उसमें आनन्द का अंश आ जाता है। इनसे सुख दूना और दुख हलका हो जाता है। त्यौहार, विवाह व पुत्र-जन्मोत्सव पर गाये जाने वाले गीतों से हमारी प्रसन्नता बढ़ जाती है। लोकगीतों में साहित्यिक अंश भी है। भावों से ये पूरे भरे हैं। भात के गीत किसी भी भाई और बहन को विह्वल कर देंगे। पारिवारिक दृष्टि से जितना इनका महत्त्व है उतना किसी भी काव्य का नहीं। कितनी ऐसी साहित्यिक काव्य-कृतियां हैं जो हमारे पारिवारिक सम्बन्धों को जोड़ती हैं? आज के युग में जब लोग संयुक्त परिवार से हट रहे हैं, पारिवारिक सम्बन्धों को अच्छे रखने में लोकगीत सबसे अधिक सहायक सिद्ध होंगे। सामाजिक दृष्टि से जितना इनका महत्त्व है उतना दूसरी वस्तु का नहीं। लोकगीतों में जातियों के साथ अपनत्त्व व्यक्त हुआ है। कुम्हार का चाक पूजने के लिये स्त्रियां जाती हैं और गीत गाती हैं। मालिन की मनुहार की जाती है। रेगर, दर्जी, सुनार, चमार, लीलगर (रंगरेज) सभी के साथ लोकगीतों में अपनत्त्व प्रकट किया गया है। लोक समाज के सदस्य एक दूसरे पर आश्रित हैं। बिना सहयोग के समाज का काम एक कदम भी नहीं चल सकता। राजस्थान के प्रिय छंद दूहों में तो फिर भी जातियों पर कटाक्ष मिलते हैं,[1] किन्तु लोकगीतों में उनके प्रति प्रेम और सुहृदयता ही मिलती है। लोकगीत किसी भी देश की संस्कृति के रक्षक हैं। त्यौहार-उत्सवों के साथ इनका अविच्छिन्न और

[1] देखिये—राजस्थानरा दूहा—संपादक—श्री नरोत्तमदास स्वामी

अटूट सम्बन्ध है। लोकनृत्यों एवं लोकनाट्यों को भी ये ही प्राण देते हैं। हमारे रीति-रिवाज भी इनसे सम्बन्धित हैं। ये रीतिरिवाजों और देश की मौलिकता को बचाये रखते हैं। विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव को इन्होंने किसी सीमा तक रोके रक्खा है। लोकगीत भारत की आत्मा है। सौन्दर्य, समृद्धि और आदर्श के चित्र इन्होंने हमारे सामने हमेशां खींचे हैं। पाबूजी राठौड़, तेजा जाट, गोगा चौहान, राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम आदि यशस्वी वीरों एवं कर्तव्यपरायण महा पुरुषों के आदर्श चरित्र लोकगीत हमारे सामने सदा प्रस्तुत करते रहे हैं। ये नैसर्गिक प्रवृत्तियों का परिष्कार करते हैं। जिनके जीवन में लोकगीत घर नहीं कर गये हैं, वे नाना प्रकार की बुराइयों में अपना समय देते हैं। लोकगीत हमें शान्ति और सुख देते हैं, जो जीवन के अनमोल साथी हैं। कुछ लोग गीतों पर अश्लीलता का दोषारोपण करते हैं। ऐसी चीजें छोड़ी भी जा सकती हैं। किन्तु छेड़ छाड़, मजाक, व्यंग का अंश जो गीतों में मिलता है वह तो श्रेष्ठ साहित्यिक गुण है। संगीत की दृष्टि से देखें तो आदिकाल की राग-रागनियां इनमें सुरक्षित मिलेंगी। "साहित्य समाज का दर्पण है" के अनुसार पुराने जमाने के चलचित्र हमारी आंखों के सामने आ जाते हैं। एक सजीव दृश्य हमारे सामने आ निकलता है जो स्वप्न की सी चीज रह गई है। हमारी संस्कृति के इतिहास के लिये तो वह बड़ी मूल्यवान निधि है। कितने ही अलंकरणों का वर्णन मिलता है। कदली देश के हाथी, सोरठड़ी तलवार, देवगढ़ी थाली, सिंधु देश के घोड़े, बीजासर की बीजणी, आदि का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है। सतियों पर गीत मिलते हैं जो पतिव्रत धर्म की शिक्षा देते हैं। हमारे पुराने शकुन, कामण, विश्वास, लोकाचार आदि को ये व्यक्त करते हैं। इस प्रकार परम्परा, इतिहास और संस्कृति की यह बड़ी पूँजी है। यात्रा करते समय लोकगीत गाये जाते हैं, रास्ते की थकान महसूस नहीं होती। इसी प्रकार खेती करते समय कड़ा परिश्रम करते वक्त श्रमी लोग लोकगीतों का ही सहारा लेते हैं। उस उल्लास के सहारे वे बड़े से बड़ा मेहनत का काम कर डालते हैं। उन्हें काम की उखतावर महसूस नहीं होती। जिन्होंने खेती–कटाई के समय श्रमी वर्ग की उन्मुक्तता और निर्बंध उल्लास देखा है वे इससे सहमत होंगे। संक्षेप में लोकगीत हममें स्फूर्ति भरते हैं। वे आनन्द देते हैं जो जीवन का अनमोल पाथेय और सहारा है। आर्थिक दृष्टि से

हीन आदिवासियों को जीवित कौन रखते हैं ? आधे पेट भूखे रह कर भी किनके बल पर वे स्वस्थ एवं बलिष्ठ और सुखी हैं ? किन से वे अपनी समस्त चिंताओं को और अभावों को भूल जाते हैं ? धन्य हैं वे और उनके ये चिरसंगी लोकगीत !

अध्याय २

स्वर-सौन्दर्य

राजस्थानी लोकगीत अन्य प्रान्तों के गीतों की तरह ही जन-जीवन के अत्यन्त निकट रहे हैं और उसके उत्थान-पतन की कहानी को उन्होंने बड़ी सचाई के साथ चित्रित किया है। आदि काल से ही रोना और गाना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार रहा है और प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी रूप में रोता और गाता ही है। इसी रोने और गाने को उसने सर्वप्रथम दुख और सुख के क्षणों में गुनगुना कर व्यक्त किया है। भावोद्रेक के उन्हीं तीव्र क्षणों में उसकी गुनगुनाहट विविध रूप धारण करती रही और उसके साथ ही शब्दों की सृष्टि भी होती रही। अतः यह भी निश्चित ही है कि मनुष्य के हृदय में पहले स्वरों की उत्पत्ति हुई और बाद में शब्दों की। शास्त्रीय संगीत या शास्त्रीय साहित्य में यह क्रम उलट जाता है— पहले शब्दों की सृष्टि की जाती है और बाद में उन्हें स्वर दिये जाते हैं। अतः यह तो सिद्ध है कि लोकगीतों की ध्वनियों को समझे बिना उसके शब्दों के महत्त्व को पूरी तरह समझा ही नहीं जा सकता।

परन्तु जब से लोकगीतों की तरफ जनता की रुचि जागृत हुई है तभी से पहले गीतों के साहित्य की ओर ध्यान गया है, उनकी ध्वनियों की तरफ नहीं। यही कारण है कि राजस्थान के कई विद्वानों ने लोकगीतों के सम्बंध में पुस्तकें प्रकाशित की हैं। निश्चय ही उनसे साहित्य की सेवा हुई है, परन्तु गीतों का संगीत पक्ष अब तक उपेक्षित रहा है।

राजस्थान के अनेक गीतों के परीक्षण से यह सिद्ध होता है कि राजस्थान का लोक-संगीत बहुत ही गम्भीर और गर्व करने योग्य है। संगीत की दृष्टि से इन गीतों का वैज्ञानिक विश्लेषण भी किया जा सकता है तथा गीतों की स्वर-रचना के परीक्षण से यह भी पता लगाया जा सकता है कि अमुक गीत किन परिस्थितियों के बीच गुजरा और उसकी स्वर-रचना के पीछे किस भावना की प्रधानता रही। क्योंकि हम यह तो जानते ही हैं कि लोकगीतों की रचनायें स्वाभाविक भावोद्रेक की स्थिति

में हुई हैं, उनमें बौद्धिक तत्त्व की नितान्त न्यूनता रही है। किसी भाव विशेष के प्रभाव से कोई ध्वनि अनजान में गुनगुनाई गई और तदुपरान्त उसे शब्दों का आवरण पहनाया गया। अतः यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन स्वर-रचनाओं में मनुष्य के स्वर-ज्ञान या संगीत-ज्ञान को श्रेय नहीं दिया जा सकता। किसी भाव विशेष को व्यक्त करने के लिये स्वर रचनायें स्वाभाविक रूप से ही गायक के हृदय से उद्भासित हुई। उन्हें शास्त्रीय संगीत के वैज्ञानिक तत्त्वों से मिलान करने से वे सोलह आना शुद्ध भी निकलती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इन्हीं स्वाभाविक स्वर-रचनाओं पर शास्त्रीय संगीत की रागों की उत्पत्ति हुई और विद्वानों ने उनका नामकरण भी किया।

ऐसी अनेक ध्वनियां राजस्थानी गीतों में प्रचलित हैं जो शुद्ध शास्त्रीय रागों से मिलती-जुलती हैं। उन धुनों के परीक्षण से यह भी पता लगता है कि जिस भाव विशेष का उनमें चित्रण किया गया है वह उसके शब्दों के अर्थ से पूर्ण रूप से मेल खाता है। जैसे एक गीत के शब्द यदि प्रसन्नता के द्योतक हैं तो उसके स्वर भी भैरवी या अन्य किसी प्रसन्नता की द्योतक रागनी से ही रचे गये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि संगीत की अधिकांश रागों की रचनाएं आदिकाल से मनुष्य के हृदय में अनजान में ही होती रही हैं, जिन्हें बाद के शास्त्रीय संगीतकारों ने सजाया और संवारा है।

राजस्थानी लोकगीतों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि मुख्यतः निम्नलिखित रागों की रचना हुई—देस, सोरठ, खमाज, कालिंगड़ा, भैरवी, भैरव, पीलू, सारंग, तिलककामोद, काफी आदि।

यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन गीतों को स्वर देने में किसी शास्त्रीय संगीत के ज्ञान की आवश्यकता नहीं रही होगी क्योंकि उनके शब्दों के तथा स्वरों के परीक्षण से यह पता लगता है कि उसकी रचना में किसी प्रकार के बौद्धिक या शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं रही होगी। उसके नमूने नीचे दिये जाते हैं। इनमें पीलू और सारंग के प्रयोग अधिक मिलते हैं।

(१) दिल्ली शहर रा साहबा पीळो मंगाघोजी, तो हाथ पचीसी गठ तीसी गाढा मारूजी, पीळो मंगाघोजी (पीलू)

(२) ऊंची तो खींवे ढोला बीजळी कोई नीची तो खींवे जी तिराग, जी ढोला (तिलक कामोद)

(३) चढ़ती वहू ने ए सुकण भला होया राज (सोरठ),
(४) आज म्हारी इमली फल रही (सारंग),
(५) ढप काहे को वजाओ जी-वालम रसिया ढप काहे को ? (काफी)

जिस तरह राजस्थानी लोक-ध्वनियों के विश्लेषण से यह पता लगाया जा सकता है कि उक्त विशिष्ट रागों में ही बहुधा गीत रचे गये वैसे ही अन्य प्रान्तों के गीतों से यह पता लग सकता है कि उनमें किन राग विशेष में गीतों की रचना हुई है। इस तरह लगभग सभी शास्त्रीय रागों की उत्पत्ति का इतिहास अंकित किया जा सकता है। इस विश्लेषण से यह भी पता लग सकता है कि आदि रागें कौनसी हैं ?

मूल रागों के अलावा अनेक मिश्रित रागें जो विविध रागों के स्वर-संकलन और मिश्रण से बनाई गई हैं, ऐसी भी हैं जिनमें लोकगीत नहीं रचे गये हैं। उनमें से कुछ रागें इस प्रकार हैं—हंस किंकनी, हंस-नारायणी, पट विहाग, पट मंजरी, आदि।

इस तरह स्वर-रचना की दृष्टि से राजस्थान की लोक-धुनों का नीचे लिखे अनुसार वर्गीकरण हो सकता है —

(क) वे गीत जो आदिमजातियों द्वारा गाये जाते हैं और जिनमें शब्दों और स्वरों की अत्यंत सादगी होती है। उनमें स्वरों का उतार-चढ़ाव भी वहुत कम होता है और शब्दों का लालित्य और जमाव भी वहुत कम होता है। ये गीत निश्चय ही मनुष्य की प्रारम्भिक अवस्था के हैं जब वह विकास की बहुत नीची मंजिल पर ही रहा होगा। उनमें स्वरों का लालित्य भी विशेष नहीं और शब्दों की विकास सीमा भी वहुत छोटी है। इन धुनों में स्वरों का सौष्ठव भी कम होता है और मुश्किल से उन्हें रागों में ढाला जा सकता है। परन्तु सूक्ष्म अध्ययन से उनमें भी रागों के अंकुर पाये जा सकते हैं। जैसे—

(१) कँकू झेलो वाली ए, कँकू आम्बारी रखवाली ए,
(२) वोल रे वणजारा थारी वाळद कण्यू भरी,
(३) हियो हियो करलो रे वणजारिया हो,
(४) म्हारा हरिया वन रा कूकड़ा,
थारी वोली पियारी घणी लागे, म्हारा हरिया वन रा कूकड़ा,
(५) काँधे कुदाळी माथे पालणो, ए माळी चालो खेत में

(ख) दूसरे वे गीत हैं जो गाँवों में या शहरों में अविकसित जातियों में प्रचलित हैं। ये गीत साधारणतया सभी लोगों द्वारा आनंद के अवसरों पर गाये जाते हैं। ये गीत भी आदिमजातियों के गीतों से ही मिलते-जुलते हैं।

(ग) तीसरे वे गीत हैं जो राजस्थान की उन ग्रामीण और शहरी स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं, जिन पर नये जमाने की रोशनी नहीं पड़ी है। ये गीत सामूहिक रूप से स्त्रियों द्वारा विवाह-शादियों पर या विशेष प्रसङ्गों पर गाये जाते हैं। ये गीत भी शब्द और स्वरों की रचना की दृष्टि से सरल होते हैं। पहली और दूसरी श्रेणी के गीतों में लिंग-भेद नहीं है। पुरुष और स्त्रियों के गाने के गीत स्वरों की दृष्टि से एक ही हैं परन्तु तीसरी श्रेणी के लोकगीतों में स्त्रियों के गाने की धुनें विशेषता लिये हुए होती हैं। जैसे—

(१) आई आई सावणिया री तीज गोरी ओ रमवा तीसरथाजी म्हारा राज (तीज),

(२) वाय चल्या छा भंवरजी पीपळी जी (वर्षा ऋतु),

(३) म्हारे आंगण आम पिछोकड़ मरवो, यो घर सदा ए सुहावणो (विवाह),

(४) भैंरू आओनी फुलड़ रा हार देव, रंगीला भैंरू आवन्यो।

(घ) चौथी प्रकार के गीत वे हैं जो बहुधा संगतों में गाये जाते हैं। इन गीत-स्वरों की सीमा सीमित होती है, परन्तु उनमें कुछ प्रवीणता है। क्योंकि वे नित्यप्रति नियमित रूप से स्वान्तः सुखाय या भक्त मंडलियों में गाये जाते हैं। नित्य के अभ्यास से वे परिमार्जित हो गये हैं। इन गीतों में रागों का स्वरूप स्पष्ट नहीं है परन्तु सूक्ष्म अध्ययन से उनमें भी स्वरूप स्पष्ट हो सकता है। इन गीतों में संगत के गीत, साधु-संतों द्वारा गाये जाने वाले गीत तथा जागरण के गीत सम्मिलित हैं। बलाई, भांभी, कामड़, चमार, धोबी तथा गांव की अन्य निम्न जातियां इन्हें गाती हैं। ये बहुधा चौतारे या इकतारे पर करताल-मंजीरा के साथ गाये जाते हैं—

(१) चालो रे चालो बाळ सुवाळ झोलो चालो ए,

(२) मैं थारे रंग राची मोहन,

(३) हे म्हारी हेली समझ सुहागण सुरता नार लगन मोरी राम से लगी,

(४) थूं क्यां पर करै मरोड़ रे नर थोड़ी सी जिंदगानी।

(ङ) पाँचवें प्रकार के लोकगीत वे हैं जो व्यवसायिक लोगों के गीतों की श्रेणी में आते हैं। इनमें भी दो श्रेणियाँ हैं। एक तो वे व्यवसायिक लोग जिन पर ग्राम्य जीवन का पूर्ण रूप से प्रभाव है और जिनको शहरी सभ्यता ने प्रभावित नहीं किया है। जैसे भोपे, कामड़, सरगड़े, लंगे, मिरासी, रंगास्वामी, कानगूजर आदि।

दूसरे वे हैं जिन पर शहरों का प्रभाव पड़ा है, जैसे ढोली, गंधर्व, मिरासी, वैरागी आदि।

ग्रामीण व्यवसायिक लोकगीतकार अपनी आजीविका ही गाने-बजाने से उपार्जित करता है। उसके गीतों में तालसुर की पूर्णता है और वह गीतों को प्रवीणता के साथ गाता है। पहली से चार श्रेणी के लोकगीतों में अंतरा प्रायः लोप रहता है या स्थायी में ही अंतरा रहता है। ये सब गीत प्रायः किसी न किसी शास्त्रीय राग की छाया लिये हुए रहते हैं। जैसे—राजन रा सूआ रे करस्यां मिजमानी आओ रंग महल में (मिरासी)। पाँचवीं श्रेणी के गीतों में पाबूजी, हड़बूजी, रामदेवजी तथा देवजी के भोपों द्वारा गाये जाने वाले गीत तथा लंगों द्वारा गाये जाने वाले लोकगीत हैं जो यजमानों के यहां विशिष्ट अवसरों पर गाये जाते हैं।

इस श्रेणी के दूसरे प्रकार के गीतों में ख्यालों के गीत, नौटंकियों के गीत, तुर्राकलंगी, रासधारी, रम्मत आदि के गीत हैं। इन गीतों में यद्यपि प्रधानता ग्राम्यजीवन की है परन्तु इनमें व्यवसायिकता की गहरी छाप है और प्रवीण गीत गाने वाले ही इन्हें गा सकते हैं। इन गीतों में स्थाई अंतरों की स्पष्ट रूपरेखा है और कहीं कहीं तो तान अलाप के साथ भी गाये जाते हैं। इनके साथ ढोलक या नक्काड़ा बजाने वाले को अपनी कलाबाजी बताने की भी खूब गुंजाइश है।

इन्हीं गीतों में ढोलियों और मिरासियों के गीत भी हैं। ये दोनों ही जातियां ऐसी हैं जिन पर शहरी जीवन का खूब प्रभाव है और जो साधारण लोकगीतों को भी मोड़-तोड़कर खटकों के साथ शास्त्रीय गीतों की तरह अलाप-तानों के साथ गाते हैं। यद्यपि इनको शास्त्रीय संगीत

का ज्ञान नहीं के बराबर है परन्तु अपने जातिगत गुणों के कारण ये प्रत्येक गीत को उसी ढंग से गाते हैं। इन गीतों में कुछ गीतों का उल्लेख भी किया जा सकता है, जैसे माँड, मूमल, जल्ला, ओळूं, तीज आदि।

(ख) इसी प्रकार के गीत वे हैं जो लोकगीतों की मर्यादाओं को छोड़ कर शास्त्रीय गीतों से प्रभावित हैं। जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है कि लोकगीतों की ध्वनियों से ही शास्त्रीय संगीत की नींव पड़ी है। राग-रागनियों की व्यवस्था, विविध भावोद्रेक के अनुसार स्वरकार के गले में स्वभावतः ही हुई है। इस प्रकार जब ये ध्वनियां बहुत अधिक प्रचलित होती गई तो संगीत में विशेष रुचि रखनेवाले कलाविदों ने उन्हें विशेष रूप से सजाया, संवारा और उन्हें अनेक प्रकार से अलंकृत किया। धीरे-धीरे ये ही धुनें शास्त्रीय रागों में परिवर्तित हुईं और वे संगीतशास्त्र के वादी, संवादी, विवादी तथा आरोही-अवरोही के नियमों से बंध गईं। आज भी अनेक गीत या धुनें ऐसी हैं जो शास्त्रीय संगीत बनने की श्रेणी में हैं; उनमें लोकगीतों की सादगी और भावोद्गार नहीं हैं, उन्हें कलाकारों ने विविध तान-अलापों तथा बोलतानों आदि से जकड़कर लगभग शास्त्रीय बना डाला है। ऐसे गीतों की श्रेणी में मांड, मूमल आदि आते हैं, जो राग की विविध परंपराओं के साथ ही गाये जाते हैं। जैसे—

(१) काछवियो लसंड़ बाई जळ केरो तीर,

(२) केसरिया बालम आवोनी पधारो म्हारा राज।

गीतों के उक्त विश्लेषण के साथ ही तीन प्रकार के अन्य विश्लेषण भी संभव हैं। जैसे मरुभूमि के गीत, पहाड़ी प्रदेश के तथा चंबल-बनास घाटी के गीत। इन तीनों शैली के गीतों में भी बड़ा अन्तर है।

(१) मरुभूमि के गीत

मरुभूमि के सामुदायिक लोकगीत जितने रमणीक और मनमोहक होते हैं उतने अन्य गीत नहीं। इसका मूल कारण यह है कि प्राकृतिक सौन्दर्य के अभाव में मनुष्य को अपने मनोरंजन की स्वयं रचना करनी पड़ी है। दिन भर की थकान के बाद तथा दोपहर की गरम लू से बचने के लिये मरुभूमि का मनुष्य अपने घर की चहारदीवारी में ही रहा और वहां उसने अपने खाली समय का उपयोग

कल्पना-प्रधान गीतों की रचना में किया। इन गीतों में साहित्यिक अभिव्यंजना के साथ स्वरों का भी लालित्य है। यही कारण है कि मरुभूमि के लोकगीतों में जो लावण्य है वह अन्यत्र कहीं नहीं। आज भी बीकानेर, जैसलमेर आदि के प्रदेशों में लोकगीतों का जितना प्रचार है उतना कहीं नहीं। इन गीतों में साहित्य और ध्वनियों के सौन्दर्य का बड़ा सुन्दर सामंजस्य है। यही कारण है कि 'पीपली', 'कुरजा', 'एलची', 'रतनराणो' आदि राजस्थान के प्रमुख गीतों का जन्म मरुभूमि में ही हुआ है। इन गीतों पर राजस्थान की कला और संस्कृति की सुन्दर छाप है। इन गीतों की धुनों में जो चातुर्य्य और लालित्य है उतना अन्यत्र कहीं नहीं। इधर के सामुदायिक और व्यवसायिक गीतों में भी विशेष भेद नहीं। इसका मूल कारण यही है कि ये वैयक्तिक वातावरण में ही विकसित हुए हैं। ऊँट पर बैठकर या पैदल चलकर जब यात्री रेतीले प्रदेश में कोसों दूर की यात्रा करता तो पवन की पुरवाही के साथ चतुर्मुखी दिशाओं में गुंजारित होनेवाली धुनें उसके कंठ से उद्भासित होती रहीं और वह एकांत में उन्हें विविध उपधुनों में गूंथता रहा। उन धुनों को शब्द देने के उपरान्त उन्हें कभी भी मिलकर गाने का अवसर नहीं आया। लम्बे-चौड़े रेतीले प्रदेश में जहां मनुष्य की बस्तियां कोसों दूर बसी हुई हैं वहां सामुदायिक गीतों की परम्परा बहुत कम प्रचलित हुई। यही कारण है कि गाने वालों की व्यवसायिक जातियाँ भी इधर जितनी पाई जाती हैं उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। इन गायकों के गीत भी सामुदायिक गीतों के गुणों से युक्त नहीं होते। यही कारण है कि कामड़, भोपे, सरगड़े, लंगे, मिरासी, पातर, कलावंत आदि संगीतज्ञ जातियों का आदि निवासस्थान मरुभूमि ही रही और यहीं से वे सब तरफ फैल गई।

(२) पहाड़ी प्रदेश के लोक-गीत

राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों में डूंगरपुर, उदयपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, सिरोही तथा आबू के क्षेत्र शुमार किये जाते हैं। इन क्षेत्रों में सामुदायिक लोकगीतों का चलन विशेष रहा है। भौगोलिक दृष्टि से इन क्षेत्रों की बनावट ही ऐसी है कि जहां लोगों को समूह में रहने की आवश्यकता अधिक रही। यही कारण है कि सामूहिक लोकगीत, सामूहिक समारोह तथा सामूहिक नृत्य आदि का विकास इधर

सर्वाधिक हुआ। प्रकृति ने स्वयं ने मनुष्य को मनोरंजन के इतने साधन उपलब्ध किये कि मनुष्य के स्व-निर्मित मनोरंजन का महत्त्व विशेष नहीं रहा। यही कारण है कि इधर के लोकगीतों में स्वर और शब्दों की दृष्टि से इतना लालित्य नहीं है जितना अन्यत्र है। इन गीतों में अलापों के लंबान की कमी है। धुनें बहुधा छोटी और संक्षिप्त होती हैं। स्वरों की सीमा भी छोटी होती है और स्वर-रचना अत्यंत सरल और प्राथमिक होती है। यही कारण है कि समूह में ये गीत बड़ी आसानी से गाये जा सकते हैं। अंतरे इन गीतों में बहुधा होते ही नहीं और रागों का स्वरूप भी बहुधा संपूर्ण रूप से नहीं निखरता। इन गीतों की धुनों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इन पर विशेष ध्यान नहीं लगाया गया है। अनेक गीत मरुभूमि से कुछ रूपान्तर के साथ इधर आये हैं जैसे ओळूं, लूर, मांड, मूमळ, कुरजां, ढोला मारू, कलाळी आदि। इन क्षेत्रों के गीतों के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

(१) कुरजां ए म्हारो भँवर मिलाद्यो ए,

(२) सागर पाणीड़े ने जाऊं सा निजर लग जाय,

(३) म्हारी घूमर छै नखराळी ए मां, घूमर रमवा म्हे जास्यां।

(२) चंबल तथा बनास की समतल भूमि के लोक-गीत

इन क्षेत्रों में कोटा, जयपुर, अलवर, भरतपुर, करौली तथा धौलपुर के गीत हैं। भाषा की दृष्टि से इन गीतों में विभिन्नता है, परन्तु गीतों की धुनों की प्रकृति में साम्य है। स्वरों का चढ़ाव-उतार काफी मात्रा में है। गीतों में कहीं-कहीं अंतरा नहीं होते हुए भी टीप से ऊपर के स्वर प्रयुक्त किये गये हैं। मंद्र से लेकर तीसरी सप्तक के स्वरों तक पहुँचने की चेष्टा रहती है। स्वर-रचना भी अपेक्षाकृत अच्छी है। सामूहिक और वैयक्तिक गीतों के बीच कोई गहरी रेखा नहीं है। दोनों ही प्रकार के गीत बहुतायत से पाये जाते हैं।

इस प्रकार के कुछ गीतों के नमूने नीचे दिये जाते हैं। व्यवसायिक लोकगीतों की अपेक्षा सामुदायिक लोकगीतों का चलन इधर विशेष है। भगवान कृष्ण की लीला भूमि के निकट के क्षेत्र होने से भक्ति और शृङ्गार के लोकगीतों की प्रधानता है और इसी कारण सामुदायिक रूप में ही ये विशेषरूप से प्रचलित हैं—

(१) जीजी थारो बलमो हमारो जुमारो कैसे काटूं री,
(२) तोहे मैं बरज रही साँवरिया बालम, पर घर मतना जाय,
(३) कैसे आयो मेरी बाखल में बतादे काना मोय।

राजस्थानी लोक-गीतों की तालें

शास्त्रीय रागों में जो तालों की योजना हुई है, वह मात्राओं के किसी विशेष नियम के अन्तर्गत हुई है। उसके साथ तोड़ों, परनों तथा गतों का ऐसा शास्त्र जोड़ दिया है कि उसके अभ्यास और उपयोग के बिना कोई भी ताल पूर्ण नहीं समझी जाती, परन्तु लोक गीतों में ताल का प्रायः कोई शास्त्र नहीं है। गीतों की लय ही उसकी आत्मा है। बिना लय के तो कोई गीत रचा ही नहीं जा सकता। जिस समय किसी के कंठ से किसी धुन की सृष्टि हुई होगी वह सर्व प्रथम ताल पर ही रची गई होगी। बैलगाड़ी में, ऊँट पर तथा किसी भी वाहन पर चलते समय जो धुनें उद्भासित हुई वे पहियों की चाल, ऊँट के कदम तथा स्वयं के कदम की ताल पर ही रची गई होगी। अतः यह तो स्वाभाविक है कि लोक-गीतों की तालें स्पष्ट और सरल होती हैं। चूंकि ये धुनें भावोद्गार पूर्ण होती हैं अतः ताल में सच्ची होती हैं, और जो शब्द उन्हें दिये जाते हैं वे भी छंद की दृष्टि से सच्चे होते हैं। इन गीतों में विद्वत्ता और बौद्धिक तत्त्वों की कमी है। छंददोष होते हुए भी वे तालबद्ध गाये जा सकते हैं। परन्तु लोक-गीतों के शब्दों में यदि कोई छंददोष हो तो वे तालबद्ध गाये ही नहीं जा सकते। इसका कारण यही है कि शास्त्रीय संगीत शब्दों को तोड़ मोड़कर तथा आलाप तानें तथा बोल तानों से आवृत्त करके ताल में गाया जा सकता है परन्तु लोकगीतों में शब्दों को तोड़ने मोड़ने तथा आलाप तानों से तालबद्ध करने की परम्परा नहीं है। इसीलिये लोकगीतों में ताल का अंश अत्यंत परिपक्व होता है।

लोकगीतों में जो तालें प्रयुक्त हुई हैं उनके पीछे कोई शास्त्र नहीं है। जिस तरह लोक-धुनों से ही शास्त्रीय रागों की सृष्टि हुई है उसी तरह लोकगीतों की तालों से शास्त्रीय तालें विकसित हुई हैं। लोकगीतकार की धुनें जो कंठ से निकल गई वे श्वास की गति के साथ ही ताल ही में उद्भासित हुई। स्वभाव से जो सर्व प्रथम तालें प्रकट हुई उनमें 'कहरवा' और 'दादरा' ही सर्वाधिक प्रचलित हुई होगी। ये दोनों ही

तालें रोजमर्रा की किसी भी क्रिया में प्रयुक्त होती हैं। इनसे कुछ कठिन तालें हैं दीपचंदी, झूमरा और रूपक। ये तीनों तालें यद्यपि सरल हैं परन्तु स्वभावतः किसी विशेष परिस्थिति में ही इन तालों में धुनें उद्भासित होती हैं। लोक-गीतों में प्रयुक्त होने वाली ये ही ६ तालें हैं।

सामुदायिक गीतों में चूँकि सभी लोगों को सुर में साथ गाना पड़ता है अतः ये गीत प्रायः कहरवा या दादरा में होते हैं। व्यवसायिक गीतों में दीपचंदी, झूमरा और रूपक विशेष रूप से प्रयुक्त होते हैं। क्योंकि उनमें कुछ अधिक कलाबाजी का अवसर है। परन्तु कुछ गीत ऐसे भी हैं जैसे बधावा आदि जो कि सामूहिक रूप से स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं परन्तु वे दीपचंदी में बंधे हुए हैं।

यद्यपि लोकगीतों के रचयिता या गाने वालों को तालों का शास्त्रीय ज्ञान नहीं होता है, फिर भी वे ताल में पक्के होते हैं। व्यवसायिक लोकगीत गाने वाले और बजानेवाले अपने गीतों के खटकों में और ढोलक की ताल में ऐसी ऐसी टेढ़ी चालें चलते हैं जो शास्त्रीय तालों के टक्कर की होती हैं। परन्तु उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि इन टेढ़ी चालों का शास्त्र क्या है? ढोलक पर अनजान में ही वे टेढ़ी से टेढ़ी परलें और तोये बजा जाते हैं। ऐसे लोकगीत यद्यपि लोकगीतों की श्रेणी में ही आते हैं परन्तु उनकी अदायगी शास्त्रीय गीतों से किसी तरह कम नहीं होती।

राजस्थानी लोकगीतों का स्वरूप

राजस्थान के अनेक लोकगीतों की परीक्षा से यह पता चला है कि उनमें कुछ गीत ऐसे हैं जिनकी रागों का स्वरूप स्थिर किया जा सकता है। ये गीत यद्यपि लोकगीतों की श्रेणी में ही आते हैं, परन्तु शास्त्रीय संगीत की रूपरेखा इन पर स्पष्ट है। उनमें से नीचे लिखे गीत विशेष उल्लेखनीय हैं—

माँड—राजस्थान में माँडों के अनेक स्वरूप प्रचलित हैं। माँडों के मुख्य गायक हैं ढोली और मिरासी। कुछ तो माँडें ऐसी हैं जो राजा-महाराजाओं की प्रसन्नता के लिये ही गाई जाती थीं। उनमें शृंगारिक भाव ही विशेष रहते हैं, स्त्रियों का वर्णन और राजसी सौन्दर्य का वर्णन ही इनके मुख्य विषय हैं।

दूसरी श्रेणी के गायक वे हैं जिन्हें संगीत का विशेष ज्ञान तो नहीं है, परन्तु माँडों को काफी दिलचस्पी से गाते हैं। पहली श्रेणी की माँडें बहुधा देस, काफी तथा खमाज के मिश्रण से गाई जाती हैं, परन्तु दूसरी प्रकार की माँडों में कहीं-कहीं दीपचंदी के ठेके पर और दरबारी गायकी के स्तर पर गायन मिलेगा। जैसे—

(१) मेवाड़ा आज्यो जी घराँ, बेली ओ छाई डूँगरां (देस),
(२) रँग माणो रँग माणो सा मिजलस रा माझी रँग माणो सा,
(३) रो नी रातड़ली, रे म्हारा मीठा मारू रो नी रातड़ली,
(४) गुलाबी मद पीवो सा म्हारा राज।

इन माँडों की आरोही, अवरोही बन सकती है। उनके वादी और संवादी स्वरों का पता लग सकता है। यह राग लगभग शास्त्रीय राग की श्रेणी में आ सकती है।

माँड एक प्रकार से शास्त्रीय ठुमरी के समान है। ठुमरी के कई गुण इसमें हैं। यह भी ठाट में गाई जाती है और ठुमरी भी। ठुमरी में गायक के लिये भाव प्रदर्शन तथा प्रत्येक सुर में आनंद लेने की जो प्रवृत्ति होती है वही माँड में भी है। माँडें कहरवा, दीपचंदी, दादरा, तथा झूमरा में गाई जाती हैं। सभी प्रकार की माँडों के नमूने नीचे देखिये—

(१) रंग माणो, रंग माणो मिजलस रा माझी रँग माणो म्हारा राज (कहरवा मात्रा ८),
(२) रो नी रातड़ली रे म्हारा मीठा मारूजी रो नी रातड़ली (ताल दादरा मात्रा ६),
(३) गुलाबी मद पीवो सा म्हारा राज (कहरवा),
(४) दे नी ए बैरण म्हाने रँगजड़ दारू दे (दीपचन्दी)।

ये माँडें बहुधा राजा-महाराजाओं के साथ जुड़े हुए ढोलियों तथा मिरासियों के कंठ पर मिलती हैं।

लोक-गीतों की गायन-विधि

विशुद्ध लोक-गीत लयबद्ध तथा बिना किसी तान, मुरकियों के ही गाया जाता है। उन्हें गाने के लिये किसी प्रकार की प्रवीणता तथा शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती, सादे ढंग से इन गीतों को कोई भी गा सकता है। अधिकांश लोक-गीत सामूहिक रूप से ही गाये जाते हैं।

वैयक्तिक गायन के लिये तो लोकगीतों की रचना होती ही नहीं है। लम्बी अवधि तक जो गीत चलन में आ जाता है, रचयिता के कंठ से निकल कर जब वह समाज की धरोहर बन जाता है और रचयिता का अस्तित्त्व उस गीत से लुप्त हो जाता है तभी वह लोकगीत में शुमार होता है। वह इतना लोकप्रिय हो जाता है कि उसे हर नागरिक अपना समझता है और उसे अपने दुख-सुख की भावनाओं का प्रतीक समझता है। यही कारण है कि जो गीत वैयक्तिक प्रयोग के दायरे से नहीं निकलता वह लोकगीत की श्रेणी से कुछ दूर ही है। सामूहिक गान के लिये गीत में लयप्रधानता तथा स्वररचना की सरलता अवश्य होनी चाहिए।

जब कोई गीत किसी व्यक्ति विशेष के चाव का शिकार बनता है तो व्यक्ति उसे तान, आलाप तथा मुरकियों के साथ गा कर अपनी कलाबाजी दिखाने की चेष्टा करता है। वह गीत अनायास ही लोकगीत के गुण छोड़ देता है और वह व्यक्ति विशेष की धरोहर बन जाता है। आज कई गायक ऐसे देखे गये हैं जो इन गीतों को अत्यधिक तोड़-मोड़ के साथ पेश करते हैं, और उनकी मूल रागों को नष्ट कर देते हैं। ये गीत न तो शास्त्रीय गीतों की श्रेणी में आते हैं और न लोकगीतों की। जिस तरह शास्त्रीय राग को गाने के लिए गायक को राग-रागनियों के अनेक नियमों का पालन करना पड़ता है और उनके उलंघन से उन रागों का स्वरूप ही वदल जाता है, इसी प्रकार लोकगीत गाने की भी अपनी परंपरा है। यद्यपि उसके लिए कोई शास्त्र नहीं लिखा गया है फिर भी उसकी परंपरा ही उसके लिए सबसे बड़ा शास्त्र है।

लोकगीतों में बहुत से गायक शब्द और स्वरों का संस्कार करते हैं, यह खतरनाक है। उससे निश्चय ही वह लोकगीत लोकप्रियता के दायरे से हटकर व्यक्ति विशेष की थाती बन जायगा, उसका सर्वव्यापी टकसालीपन नष्ट हो जायगा।

मिसाल के लिये घूमर का गीत ही लीजिये। यह गीत राजस्थान के सभी क्षेत्रों में लगभग एक टकसाली गीत की तरह ही गाया जाता है। उसका अपना सौन्दर्य है। उसकी पहुँच राजस्थान के प्रत्येक घर तक है। प्रत्येक नारी के कंठ की यह शोभा बना हुआ है। उदयपुर की एक स्त्री, बीकानेर की स्त्री के साथ मिलकर इस गीत को बिना किसी

शिक्षण के गा सकती है। परन्तु यदि उसका रूपान्तर तथा संस्कार कर दिया गया तो निश्चय ही उसकी व्यापकता घट जायगी।

गीत और लोकगीत में अन्तर

कभी-कभी गीतों और लोकगीतों में लोग कोई अन्तर नहीं समझते। कई लोग यह भी कहते सुने गये हैं कि "मैं लोकगीत लिखने में प्रवीण हूँ"। जो गीत किसी व्यक्ति विशेष द्वारा लिखा जाता हो और जिस पर समाज की छाप नहीं लगती वह लोकगीत के दायरे में नहीं आता है। लोकगीतों का लेखक और स्वरकार एक नहीं होता, सारा समाज होता है। लोकगीतों के पीछे सैकड़ों बरसों की परंपरा और समाज के उतार-चढ़ाव की कहानी अंकित रहती है। वह जिस अर्थ तथा संदेश को वहन करता है, उसके लिए सारे समाज की स्वीकृति सैंकड़ों वर्षों से प्राप्त हुई होती है। व्यक्ति द्वारा लिखे गये गीत की धुन व्यक्ति की स्वयं की होती है, उसे सारा समाज मिलकर कैसे गावे? परन्तु, बधावे, लूर, घूमर, गौर, इंडोणी, पणिहारी आदि को सभी राजस्थानी मिल कर गा सकते हैं। अतः गीतों का दायरा छोटा और लोकगीतों का बड़ा होता है। वास्तव में गीतों की शैली अत्यंत नवीन है और लोकगीतों से ही उद्भूत हुई है। लोकगीतों पर युगों के अनुभव, चढ़ाव-उतार तथा परंपराओं का प्रभाव रहता है।

अध्याय ३

राजस्थानी लोक-संगीत के प्रकार

राजस्थान लोकसंगीत एवं गीतों की दृष्टि से बहुत सम्पन्न है। यहां पुराने रीतिरिवाज बहुत बड़ी संख्या में अब भी विद्यमान हैं। यहां के कितने ही रीतिरिवाज लोकगीतों से संबंधित हैं। इस प्रकार यहां लोकगीत एवं संगीत का प्रचलन बहुत है। राजस्थान एक मरुस्थलीय भाग रहा है अतएव यहां बाहरी सभ्यता अधिक नहीं पहुँच पाई है। फल-स्वरूप यहां के गीत विशुद्ध रूप में मिलते हैं। राजस्थान को सदा से ही अपनी आनबान का गौरव रहा है। इसकी रक्षा के लिये इसने बड़े त्याग किये हैं। अपनी संस्कृति की इसने सदा ही रक्षा की है। इस प्रकार यहां के लोकगीत अपने मूल रूप में ही अधिक मिलेंगे। यदि कोई अनु-संधान-प्रेमी देश की प्राचीनता की झलक देखना चाहे तो वह राजस्थान छिपाये हुए है। मांड, सारंग, सोरठ, मारू तो जैसे इसकी अपनी ही रागें हैं।

मांड, लावणी, कथागीत, पवाड़े और संगीत-नाट्य

अपने-अपने जनपद की विशिष्ट धुन और गायन-शैली होती है। पिछले वर्षों में राजस्थान की प्रसिद्ध राग मारू रही है। इस राग का प्रयोग 'रुक्मणि मंगल' नामक भक्ति-काव्य में प्रचुर मात्रा में हुआ है किन्तु अब यह इतनी लोकप्रिय नहीं रही। यहां की दूसरी प्रसिद्ध और प्रतिनिधि गायकी एवं राग मांड है। मांड का प्रचार जोधपुर की ओर विशेष देखा जाता है। वैसे यह जयपुर, मेवाड़, जैसलमेर आदि सभी क्षेत्रों में प्रचलित है। मांड (गायन शैली) के कई प्रकार देखे जाते हैं। इसकी गायकी शास्त्रीय संगीत के बहुत निकट है। इसमें श्रुतियों और मूर्च्छनाओं का भी प्रयोग होता है। मांड की गायकी विलम्बित की है और ऊंचे स्वर में गाने से ही यह निखरती है। इसका रस भी देर से आता है। रेगिस्तान की खुली रातों में इसके सुनने का विशेष आनन्द है। इसे व्यवसायिक गायक जातियाँ, जैसे ढोली, मिरासी आदि ही विशेषतया गाती हैं। इन गायकों में दोहों का प्रयोग कर मांड के गीत

को लम्बा भी कर दिया जाता है। कुछ प्रसिद्ध माँडों के नमूने नीचे दिये जा रहे हैं। मांड की गायकी भिन्न-भिन्न तालों अर्थात ठेकों में भी मिलती है और भिन्न-भिन्न रागनियों में भी। राजस्थान को इस विकसित, श्रेष्ठ गायकी पर बड़ा गर्व होना चाहिए। इसी प्रकार ख्यालों के दूहों की भी अपनी गायकी है जो भिन्न-भिन्न रागों में गाई जाती है। राजस्थान का लोक-संगीत कम समृद्ध नहीं। वैसे मांड गायकी का अपना ही एक विशेष ठेका है और देश में यह अधिक खिलती है। इसमें जब दोहे गाये जाते हैं तब साज बंद रहते हैं। टेक अथवा स्थाई में साज और ठेका बजता है। मांड की गायकी विलम्बित लय की है और ठेका भी इसका अपना होता है—

(१) झालो कुणी ने दियो, झालो कुणी ने दियो
आधी रा अमलाँ में, झालो कुणी ने दियो ?

(२) मेवाड़ा जी आज्यो जी घराँ, वेली ओ छाई डूँगरा। (देश में)

(३) याँ ही रेवो सा, एजी थाने पंखीयो ढुलावाँ सारी रैन,
म्हारा मीठा मारू याँही रेवो सा।

(४) म्हारा रतन राणा एकरसाँ उमराणें घुड़ल्यो फेर,
म्हारा सायर सोढ़ा एकरसाँ उमराणें घुड़ल्यो फेर,
(मांड मरसिया)

(५) म्हारी बरसाले री मूमळ हाले नी आलीजे रे देश (मूमळ)।

(६) आसी आसी दूणो रङ्ग लासी, लासी हे म्हारी सजनिया
आज तो मेवाड़ा राणा आसी, आसी है म्हारी सजनिया।

(७) ढोलो म्हारो छै जी सरवर, म्हें सरवरिये री पालाँ ए।

लावणी

लावणी का मतलब बुलाने से है। नायक के द्वारा नायिका को बुलाने के अर्थ में लावणी शब्द का प्रयोग हुआ है। अतएव स्वभावतया इसमें श्रृङ्गारिक साहित्य अधिक रचा गया। किन्तु भक्ति संबंधी लावणियां भी लिखी गई हैं। लावणी के चार प्रकार देखने में आये हैं। साधारण, ज्ञानकी, लंगड़ी और वशीकरण। लावणी-संग्रह नाम से एक संग्रह कलकत्ता की ओरसे प्रकाशित हुआ था उसमें ख्यालों में प्रयुक्त लावणियां संगृहीत की गई थी। लावणियां स्वतंत्र भी रची गई हैं, जैसे मोरध्वज, सेऊसंमन, भरथरी। ख्यालों में भी इनका प्रयोग बहुत हुआ है। लावणी गायकी क।

एक प्रकार है। यह राजस्थान की लोक प्रिय गायकी है। इसमें टेक रहती है। भिन्न-भिन्न लावणियों के नमूने नीचे दिये जा रहे हैं। भिन्न-भिन्न रागों में लावणियां गाई जाती हैं।

(१) लावणी रंगत यमीकल्याण

जिस दम में दम आदम को निकल जावे है,
कंचन काया फिर कौन काम आवे है?
इसलिए राम का नाम भजो तुम प्यारे।

(२) लावणी साधारण

मोरध्वज से राजा जगत में कथो मजलिस स्याना।
धरा संत का रूप छलन को आये श्री भगवाना॥
अर्जुन वचन कहत ठाकुरसुँ सुन मेरे मन की।
बना लो अपना भक्त चटक मोहि लग रही दरशन की॥

(३) लंगड़ी लावणी की रंगत

शेर—बादलों की फौज सज इन्द्र हस्ती पे असवार है।
ओलन का गोला गरजना वो बीजली तरवार है॥
कोकला कलकंत मोर पपैया नृतकार है।
मौसम इसी विध रहण की अब बागां बीच बहार है॥

टेर—आई बरखा की मार, फैल कर घटा छटा सुहावे है।
नहीं म्हांने सुहावे, बाग की सैल करण चित चावे है॥

(४) ख्यालकी लावणी की रङ्गत का नमूना

अब रानी बिछावे जाल, नहीं सरमावे।
या मद का देकर पातर, मुझे खिलावे॥
महाराज बणियां आज, मुसीबत आये।
ना जाऊँ तो जाऊँ चून से, जाऊँ तो लज्जा जाये॥

कथागीत और पवाड़े

राजस्थान में बहुत सी लोकगाथाएं प्रचलित रही हैं। इनसे सम्बन्धित कथागीत, प्रबन्ध गीत, लम्बे लम्बे लोकगीत और पवाड़े मिलते हैं। ये पवाड़े वीरता, वैराग्य, प्रेम, साहस आदि कई विषयों से सम्बन्धित हैं। प्रेम कथाएं सुध बुध सावलिंगा और माधवानल काम-कंदला आदि की हैं। ये दोनों कथाएं प्राचीन हैं। सावलिंगा को ढोली

गाते हैं। 'काम कंदला' पर उजीरा ने ख्याल भी लिखा है। हीर रांभा जो पंजाब की प्रसिद्ध प्रेमकथा है राजस्थान में भी आई है। इस पर नानू राणा का ख्याल मिलता है। 'रामू चनणा' के नाम से एक लम्बा गीत राजस्थान में प्रचलित है। इसकी लय धीमी है और राग सुहावनी। शेक्सपियर के 'रोमियो जूलियेट' नाटक की कथा की याद 'रामू चनणा' की कथा दिला देती है। इसमें चनणा का दुखान्त है कि वह ऊँट से गिरकर मर जाती है। वह बड़ी सुकुमार भावनाओं वाली है। कथा में बड़ी स्वाभाविकता है। नीचे कथागीतों एवं पवाड़ों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ और इनके गीतों के नमूने देने का प्रयत्न किया गया है।

ढोलामारू

पूंगल देश में एक समय अकाल पड़ा। वहां का राजा पिंगल परिवार सहित नरवर देश चला गया। वहां के राजा नल ने उसका बड़ा सत्कार किया। नल के पुत्र ढोला को देखकर पिंगल की रानी प्रसन्न हो गई और उसने अपनी पुत्री मारवण का विवाह उसके साथ कर दिया। उस समय मारू की अवस्था छोटी थी। अतएव वे उसको पूङ्गल ले गये। बड़े होने पर ढोला का विवाह मालवे की राजकुमारी मालवण के साथ हो गया। मारू के साथ विवाह होने की बात मालूम नहीं थी। मारू ने युवावस्था में स्वप्न में अपने पति ढोला को देखा और वह उससे मिलने के लिये आतुर हो उठी। अंत में बड़ी कठिनाइयों के बाद उसको अपना पति मिला। मालवण उसके मार्ग में बहुत रौड़े अटकाती रही। अन्त में दोनों रानियां एक साथ रहने लगी। ढोलामारू शब्द राजस्थान में इतना लोक-प्रिय हुआ है कि आज राजस्थान में वह स्त्री-पुरुष के पर्याय के अर्थ में लिया जाता है। विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग इनका होना माना जाता है। ढोलामारू राजस्थान में एक लोक काव्य है। इसको ढाढ़ी गाते हैं। सैकड़ों चौपाईयाँ मिलती हैं। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से हुआ है।

पूंगल देश दुकाळ थियूँ, किणही काल विसेस।
पिङ्गल ऊचाळउ कियउ, नल नरवर चई देस॥

यह ढोला मारूरा दूहा का प्रथम दोहा है। राती जगा में 'सनेही ढोला' नाम से एक गीत गाया जाता है। उसमें मरवण की व्यथा

चित्रित की गई है। यह गीत जायसी के नागमती के विरह-वर्णन की याद दिला देता है—

'नरवल देश सुहावणो रे लाल
बसै छ महाजन लोग
जीतर चलगो गोरी को सायबो
ढोला पान मिठाई को भोग
सनेही ढोला मारूजी घर आव
नणदल रा बीरा ढोलाजी घर आव।'

सुलतान निहालदे

सुलतान क्षत्रिय थे और उनकी स्त्री निहालदे बड़ी पतिव्रता थी। ये नरवल (ढोला की स्त्री) के यहां नौकरी करते थे। इन्हें बड़ा अच्छा वेतन मिलता था किन्तु इन्होंने उन रुपयों से नरवलगढ़ में कुए, बावड़ी, धर्मशालाएँ बनवा दीं। इन्होंने नरवल को अपनी बहन मानकर भात भरा था। सुल्तान वीर भी थे। इनको युद्ध भी करना पड़ा। परदुःख कातरता और दूसरों का दुःख दूर करना इनका विशेष गुण था। इन पर बहुत से पवाड़े मिलते हैं। इनको जोगी सारंगी पर कई दिन तक गाते हैं। शांत आधी रात में इनकी धुन बड़ी सुहावनी लगती है। यह एक ही धुन से गाया जाता है। इसलिये इसको गा कर रेगिस्तान की लम्बी मंजिलें पार करते हैं।

बोल हैं—
'सलप भी बड़ो है औ दाता नरको के बड़ो।
सलप भी चिणादे नर नैं कूआ बावड़ी।
सलप भी संगादे नर नैं भील।
धुलका भी बांधड़ा मोती नाचनै—'

इन पवाड़ों को जोगी प्रधानतया चतुर्मास (चौमासा) में सारंगी पर सुनाया करते हैं। रेगिस्तानी इलाके में इनका प्रचलन अधिक है। पवाड़े अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं।

भरथरी

ये उज्जैन नगरी के राजा थे। इनके १६०० रानियां कही जाती हैं। पटरानी का नाम पिंगला था। इन्होंने दो युग राज्य किया। फिर इनको

संसार से विरक्ति होगई थी। गुरू गोरखनाथजी के उपदेश से इन्होंने सन्यास ले लिया था। इनके छोटे भाई का नाम विक्रम था। इनकी कथा बड़ी ही कारुणिक है। जोगी इसे गाकर चतुर्मास में सुनाते हैं। यह भी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ है—

'ऐजी म्हारे लेरा लागा रमता जोगी
अरे लार मइया पिंगला
राजाजी अरे सासू ने वना सूनो सासरो
माता वना कैसा पीर, राजा भरथरी।

गोपीचन्द

ये भरथरी के भानजे थे। अपनी माता की आज्ञा से १२ वर्ष में ही ये जोगी होगये थे। बंगाल में ये बारा भाटी के राजा थे। इनके बहनोई का नाम उग्रसेन था और बहन का नाम चंद्रावल तथा माता का नाम मेणावती था। अपनी बहिन से इन्होंने गुरु के आदेश से भिक्षा मांगी। इनके गुरु का नाम जलंदरनाथ था। इसकी कथा भी बड़ी करुणाप्रद है। इसे भी जोगी सारंगी पर गाते हैं। यह भी अभी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ है।

'सुन चम्पा वैना भिक्या घालू' तेरे हाथ की
अरे लाला कने दिया जोग ?
जोगी मत होवे वाली वेस में
सुन चम्पा वैना रस्ता बतादे अमर कोट का,
राजा भरथरी तेरा मामा अमर हो गया नाम।

शिवजी को ब्यावलो

यह भक्ति रसका मौखिक काव्य है किन्तु इसमें शास्त्र भी पर्याप्त मात्रा में आया है। पार्वती और शिव के विवाह को राजस्थानी रूप दिया गया है। निकासी, डेरा, फेरा, जीमणवार तथा 'पहरावनी' के प्रसंग इसमें आये हैं। इसे जोगी सारंगी पर बजाते हैं और गाकर सुनाते हैं। इसमें लगभग ३५ प्रसंग हैं जो कथा का भाग बनते चलते हैं जैसे विनय, कथा प्रारम्भ, शक्ति जन्म, वर-प्रार्थना, महाकाली, शिवलक्षण, स्वप्न, पार्वती जन्म, जन्माक्षर, बाल्यकाल, विवाह चर्चा, टीको, वर परीक्षा शिवचर्चा आदि। प्रारम्भ इस प्रकार है—

बिखम बैल बाघम्बर सोहै
हरे निरंजन सिव भोला
सदा निरंजन सिव भोला।
गणपत और गणेश मनाऊं
गुर के लागूं पांव भजन गुरु
आज्ञा पाऊं मैं शिव की।

पाबूजीरी पड़

पाबूजी वि० सं० १३१३ में पैदा हुए थे और उनका स्वर्गवास सं० १३३७ में हुआ। वे मारवाड़ के कोलू नामक ग्राम के निवासी थे। उन्होंने देवल चारणी से कालमी घोड़ी इस शर्त पर ली थी कि यदि कोई उसकी गायें घेर ले जायगा तो पाबूजी प्राण देकर भी गायों की रक्षा करेंगे। पाबूजी का विवाह उमरकोट के सूरजमल सोढा की पुत्री के साथ होना निश्चित हुआ। पाबूजी बरात सहित उमरकोट पहुँचे। पीछे से जायल के जिंदराज खींची ने देवल की गायें घेर लीं। पाबूजी तीन भाँवर ले चुके थे, चौथा भाँवर लेने को थे कि उनको गायों के घेरे जाने का समाचार मिला। खींचियों और पाबूजी में घमासान युद्ध हुआ। पाबूजी ने सारी गायें छीन कर चारणी को दे दीं। आप भी बड़ी वीरता पूर्वक लड़ते हुए इस युद्ध में काम आये। प्रतिज्ञापालन का ऐसा आदर्श उदाहरण कहाँ मिलेगा? इन पवाड़ों को भोपे गाकर सुनाते हैं। छंद इस प्रकार है—

जोसी के बेटाने सोढा लीन्यू है बुलवाय।
कोई लगन तो छै रे बो पाबूजी राठोड़ ने॥

तेजा

ये जाट थे और ये भी गौ की रक्षा में ही काम आये। इनकी सारे राजस्थान में मान्यता है। खेती शुरु करने के साथ ही इसे गाते हैं। इसे गाना खेती के लिये बड़ा शुभ माना जाता है। यह किसानों का प्रेरक गीत है—

भरियोजी भरियो मेवलियाँ में जोम रै
कोई बोलण तो लाग्यां रै पपैया बेटा, डूँगरां

डूँगजी जुँवारजी

डूँगजी जुँवारजी बटोट-पाटोदा (सीकर) के रहने वाले कछवाहा राजपूत थे। ये दोनों काका-भतीजे थे। धनवानों को लूटते थे और गरीबों को बाँट देते थे। ऐसे लोग राजस्थान में धाड़ी कहलाते हैं। डूँगजी धोखे से कैद कर लिये गये और आगरे की जेल में भेज दिये गये। जुँवारजी ने करणिया मीणा और लोटिया जाट की सहायता से इनको छुड़ा लिया। फिर भी ये धाड़े डालते रहे और अन्त में जोधपुर में डूँगजी का देहावसान हुआ। भोपे इनकी विरुदावली गाते हैं। शेखावाटी में यह अधिक प्रचलित है—

'आद नाम देवी ने सँवरूँ लागूँ गजानंद पाँव
सीकर राजा बैंठना बटोटरा सरदार।'

नरसीजी रो माहेरो

गुजरात के भक्त नरसीजी ने अपनी बहिन नानी बाई का भगवान कृष्ण की मदद से भात भरा था। उसीका इसमें वर्णन है। यह प्रकाशित काव्य है। इसे ब्राह्मण गा कर सुनाते हैं। इसको भी चतुर्मास में सुनने की प्रथा है।

रुक्मणि मंगल

यह एक बड़ा काव्यग्रन्थ है। इसे कथा कहने वाले ब्राह्मण गा कर सुनाते हैं। इसमें रुक्मणि और कृष्ण के विवाह का वर्णन है। इसको विशेषतः चतुर्मास में राजस्थानी स्त्रियां सुनती हैं। इसमें मारू राग का बहुत प्रयोग हुआ है।

इसमें कई कवियों का हाथ समय-समय पर रहा है। वैसे शुरु में यह एक व्यक्ति की रचना थी। रुकमणी की विदाई का वर्णन निम्न पंक्तियों में देखिये—

आओ सखी सहेलियां मिलो भुजा पसार।
अबका बिछड्या कद मिलां, दूर बसांगा जाय॥
मन जाणे बावल मिलूं बाटड़िया जल जाय।
अबका बिछड्या कद मिलां दूर द्वारका जाय॥
पछ भणे रुकमण कहे, बिनती एक हे माय।
बंगला में म्हारी दूलियां थे तो सम्हालो नी जाय॥

बहुत लम्बी है पर रोमांचकारी है। ये अपने धर्म और कर्तव्य पर बलिदान हो जाते हैं। मुसलमान धर्म स्वीकार न करने के कारण इनको बादशाह से लड़ना पड़ता है और ये लड़ते-लड़ते मर जाते हैं। इसमें दोहा और चंद्रायणी चलती है। भाषा में ओज है—

'भाटा भलसर जीओ, कुआ कनारे खंग ।
गुलहूंजा पानी भरे, कर कर आवो अंग ॥
कर कर आवो अंग, लटकते चेवड़े ।
नीर भरे पणिहार, मचकते चेवड़े ॥
बोलत अमृत वेण, अमाकेरी कोयली ।
खंडा मखंडा नार, असियेन होयली ॥
गले टकावळ हार, पगांतल पावटो ।
देख पराई नार, कुंवर थे क्यों आवटो ?

देवी को भारत

इसमें देवी से संबंधित कई पौराणिक कथाएं हैं। इसके साथ देवी की विरुदावलि भी है। यह मेवाड़ की ओर अधिक प्रसिद्ध है।

'देख जोग माया कणी मुळकती आई ।
देख ज्वाला तू कणी मुळकती आई ।
सेवक मारा देवड़ा नवाऊं आई देख वीरजी ।
घाटी में नारियो धकियो पकड़ कानोड़ो वैठी वीरजी ।
देख वीरा में नार पड़ी नारंगी ओ वीरा ।

संगीत-नाट्य

अब हम अभिनय से सम्बन्ध रखने वाले लोकसंगीत के विषय को लेंगे। शास्त्रों ने बतलाया है कि दृश्य काव्य का असर दर्शकों पर बहुत अधिक होता है। राजस्थानी लोक-नाटकों में संगीत की ही प्रधानता है। ये नाट्य कविता में लिखे गये हैं और शुरू से आखिर तक गाये ही जाते हैं। राजस्थानी में बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। इन ख्यालों की पुस्तकों की संख्या ३०० तक है। इन संगीत-नाट्यों में संगीत, नृत्य, अभिनय और काव्य का समन्वय पाया जाता है। खेल-तमाशा अथवा मनोरंजन के कारण इनका नाम ख्याल पड़ा। इन संगीत नाट्यों में बहुत ऊंची आवाज से गाना पड़ता है। इनके नृत्यों

में भी पैसे की बड़ी ताकत लगानी पड़ती है। इनको नाटकों ने बड़ा धक्का पहुँचाया और सिनेमा ने तो इन्हें मिटा ही दिया। कुछ पेशेवर जातियों के पास ही इनकी कला शेष रही है। इनमें गायकी और स्वर-लय की प्रधानता है। रागों को भी पालन किया जाता है, अतः ये शास्त्रीय संगीत के नजदीक हैं। कुछ वर्ष पूर्व इन्हें जनसमुदाय भी देखता था। राजस्थान के कुछ भागों में हाथरस की गायकी भी प्रवेश कर गई है। यह गायकी और इसके नृत्य कम ताकत मांगते हैं, जबकि राजस्थानी गायकी और नृत्य शारीरिक परिश्रम देने वाले और कठिन हैं। ख्याल शेखावाटी, बीकानेर, मारवाड़, जैसलमेर, मेवाड़, भरतपुर सभी में रचे और खेले गये हैं। नीचे हम सभी क्षेत्रों का विवरण दे रहे हैं। ये सब खुले रंगमंच पर प्रदर्शित किये जाते हैं।

शेखावाटी जयपुर राज्य का उत्तरी भाग है। इसमें शौकिया लोग भी ख्याल करते रहे हैं और पेशेवर भी। यहां के ख्यालों में मंच बनाया जाता है। ऊपर कभी-कभी चंदोआ भी लगा दिया जाता है। यहां के ख्यालों में नगाड़ा, सारंगी, हारमोनियम और कहीं-कहीं शहनाई का भी प्रयोग होता है। इनमें सोरठ, बागेश्री, देस, मांड, सारंग, जोगिया, भैरवी, आसावरी आदि रागों का प्रयोग अधिक होता है। छंदों में दोहा, दूहा, लावणी, कवित्त, छप्पय, झूलना, रेखता, चौपाई, दुबोला, चौबोला आदि प्रयुक्त होते हैं। दुहों की चढ़ावणी और कुमरी गायकी का इनमें प्रयोग होता है। साथ में टेक भी होती है। यह टेक मुख्य पंक्ति की रहती है। ये दूहे भिन्न-भिन्न रागों के मिलते हैं। शेखावाटी में इस समय कालिया, दूलिया और भैरों राणा के दल हैं। ये सभी पेशेवर ख्याल करने वाले हैं। ये सर्दियों के दिनों में बाहर निकलते हैं और लगभग चार मास का दौरा करते हैं। मारवाड़ियों ने इन्हें प्रोत्साहन भी दिया है। शेखावाटी के ख्याल-लेखकों में नानू राणा, उमराव तेली, प्रहलादी राम पुरोहित और प्रेमसुख जोशी मुख्य हैं। नानू ने २५ की संख्या में ख्याल लिखे हैं। ढोला-मरवण, चन्द्रसेन, जयदेव कलाली, हीर रांझा उसके लोकप्रिय ख्याल हैं। उमराव के करीब १० की संख्या में ख्याल मिलते हैं। जैसे नरसीजी, मालदे, हाड़ी राणी, राजा हरिश्चंद्र, अमरसिंह आदि।

बीकानेरी ख्याल एक समय बड़े प्रसिद्ध थे। लम्बे-लम्बे घेरदार जामों तथा पेचदार पगड़ियों वाले पात्र जब बन-ठन कर आते हैं तो

देखते ही बनता है। बड़े-बड़े नक्कारों और नफीरियों पर नाट्य-संवाद होता है। सभी जातियों और सम्प्रदाय के लोग इनमें भाग लेते हैं। आज भी ये ख्याल होते हैं पर अब वे कुछ ही जातियों तक सीमित हैं। बीकानेर में श्री मोतीलाल एक प्रसिद्ध ख्याल लेखक हुए हैं। उन्होंने गोपीचन्द और अमरसिंह राठौड़ पर ख्याल लिखे हैं।

मेवाड़ के आसपास के ख्यालों में कोमलता है। वेशभूषा में मेवाड़ी पगड़ियां, तुर्रा कलंगी की छटा तथा घेरदार मेवाड़ी अंगरखियां बड़ी सुन्दर लगती हैं। सारंगी और तबले पर मेवाड़ी ख्यालों के पद गांव के भाटों द्वारा बड़ी बुलंद आवाज में गाये जाते हैं। इनकी पुनरावृत्ति अभिनेताओं द्वारा होती है। मेवाड़ी ख्यालों में किसी प्रकार का रंगमंच नहीं बनाया जाता। प्रमुख रंगस्थली के इर्द-गिर्द दर्शक गोलाकार बैठ जाते हैं। राजस्थान का एक और प्रबल संगीत-नाट्य नौटंकियों का खेल है जो प्रायः लुप्त हो गया है। इसकी विशेषता नक्कारों के वादन तथा तख्ततोड़ नाचों में है। भूमि से दो-दो चार-चार गज ऊंची छलांगों के नाच होते हैं। ये नर्तकों के शरीर को थका देते हैं। इनके कथा-प्रसंग कृष्ण और राम की कथायें हैं। यह एक व्यवसायिक लोक नाट्य है। इसमें प्रायः सभी, ब्राह्मण आदि भाग लेते हैं। इसमें रंगीन पर्दों का प्रयोग होता है। ये नौटंकियां भरतपुर, अलवर, धौलपुर आदि स्थानों की होती हैं।

मारवाड़ में कुचामण और मूंडवा ख्याल रचयिताओं के स्थान रहे हैं। कुचामणी ख्यालों में चंद्रायणी की गायकी अधिक रहती है। तिल्याणी भी चलती है। इनमें सोरठ, लूर, भैरव, प्रभाती, मांड, बरवा, सोरठ, भैरवी, आसावरी आदि रागों का प्रयोग होता है। कुचामण के लच्छीराम प्रसिद्ध ख्याल-लेखक हुए हैं। मीरा मंगल, राजा केसरीसिंह आदि इनके ख्याल हैं। मूंडवे के शिवदयाल ने भी नागोरी चतुर सुजाण और सूरत की बन मालन, कंवर रिसालू और राणी बालक दे आदि ख्याल लिखे हैं।

रम्मतें

यह भी ख्यालों का ही एक प्रकार है। इसमें साहित्य की विशेषता होती है। ये शौकिया आयोजित की जाती हैं। ये बीकानेर, जैसलमेर, पोकरण और फलोदी की ओर मिलती हैं। बीकानेर के मुख्य लेखक

सर्व श्री मनीराम व्यास, तुलसीराम, फागू महाराज और सूआ महाराज हैं। इसके मुख्य खिलाड़ी हैं सर्व श्री रामगोपाल मोहता, सई सेवक, गंगादास सेवक, सूरजकरण सेवक और जीतमल। रम्मतों में अभिनय और नृत्य का स्थान तो खास नहीं रहता पर गायन का स्थान बहुत महत्त्व-पूर्ण होता है। जैसलमेर में भी रम्मतें प्रचलित हैं। रम्मतों के गीत चौमासा, लावणी (भक्ति तथा शृंगार विषयक), गणपति वंदना तथा व्यक्ति विशेष से संबंधित रहते हैं। जैसलमेर में ख्याल भी लिखे गये हैं। तेज कवि ने मूमल म्हेंदर का खेल, छैल तम्बोलन का खेल, नैना खसम को खेल, भर्तृहरि का ख्याल (रंगत मारवाड़ी) आदि रचे हैं। इनको कुछ लोग रम्मत भी कहते हैं। वस्तुतः ख्याल और रम्मत संगीत नाट्य हैं, इनमें प्रदर्शन और रचना के विषयों की दृष्टि से कुछ अंतर है। जैसलमेर के खिलाड़ियों में सर्व श्री मक्खनमल, तुलसीदास, और जीतमल हैं। ये रात भर रम्मत करके सुबह लक्ष्मीनारायण के मंदिर में जाते हैं। उसके बाद दरबार में जाते हैं। दरबार में १) रु० इनाम में मिलता है। तेज कवि देवी का उपासक है, अच्छा खिलाड़ी है और कविता भी करता है। ये खिलाड़ी मध्यप्रदेश के शहरों तक में जाकर रम्मतें करते हैं। पोकरण में सर्व श्री परमानंद, गिरधारी सेवक और तेज कवि रम्मतें करते हैं। फलौदी में बाबूलाल सेवक पुष्करणा ब्राह्मण रम्मत के खिलाड़ी हैं।

गंधर्वों के नाट्य

ये जाति से वैश्य होते हैं। इन्हें सभी जातीय अधिकार और सम्मान प्राप्त हैं। ये पेशेवर नृत्यकार हैं। मूलतः ये मारवाड़ निवासी हैं। लगभग ८ मास ये अपने संगीत नाट्य 'अंजना सुन्दरी' और 'मैना सुन्दरी' के प्रदर्शनार्थ बाहर घूमते रहते हैं। इनके विषय जैन धर्म या जैनियों से संबंधित हैं और जैनी इन्हें बड़ी रुचि से देखते हैं। इनमें नृत्य विशेष नहीं रहता। ये वैसे तो खुले रंगमंच के नाट्य हैं किन्तु वर्तमान समय के किंचित प्रभाव के कारण इनमें रंगीन पर्दे काम में लाये जाते हैं। आजकल गंधर्व कम ही दिखलाई पड़ते हैं। आधुनिक मनोरंजनों का इन पर विपरीत असर पड़ा है। फलस्वरूप इनके परं-परागत पेशे समाप्त प्रायः हो गये हैं। ये आर्थिक दृष्टि से इसे खेलते हैं किन्तु इनका धार्मिक उद्देश्य भी रहता है। आम तौर से ये कलाकार

शिक्षित, सभ्य और शिष्ट होते हैं। अपने जीवन के मिशन के रूप में वे इन्हें करते हैं।

भवाइयों के नाट्य

भवाइयों के खेल अधिकतर बीकाजी के होते हैं। वे इनमें दोहे भी देते हैं। इनमें ढोलक, झांझ, सारंगी बजाते हैं। इनमें मशाल का भी प्रयोग होता है।

रासधारी

राजस्थानी लोकनाट्य का यह एक श्रेष्ठ उदाहरण है। यह आज भी राजस्थान के विविध क्षेत्रों में अपने रूप में विद्यमान है। यह राजस्थानी ख्याल का एक प्रकार है। इसमें बहुधा राम का सम्पूर्ण जीवन अंकित किया जाता है। इस नाम से बहुधा कृष्ण की क्रीड़ाओं से भान होता है। पहले जो रास अथवा अभिनय को धारण करे वही रासधारी कहलाता था। धीरे-धीरे सारे नाट्य का नाम ही रासधारी हो गया। रासधारियों का कथा-प्रसंग प्रायः पौराणिक एवं धार्मिक होता है। इनमें माधुर्य होता है। इनके लिये मंच बनाना आवश्यक नहीं। अभिनय की पेचीदगियाँ भी इनमें नहीं। इसमें हरिश्चंद्र, मणिहारी, चंद्रावल गूजरी, रामायण, भरथरी आदि से संबंधित कथा-प्रसंग प्रदर्शित किये जाते हैं। 'नाग नगवंती' का प्रहसन भी रक्खा जाता है। इसकी भी अपनी गायकी है। कृष्ण लीला का भी प्रदर्शन रासधारियां करती हैं। मारवाड़ में इनका प्रचलन अधिक है। रासधारियाँ कुछ विशिष्ट जातियों द्वारा एक व्यवसाय के रूप में खेली जाती हैं। ये हैं भाट, मिरासी, और ढोली। इनका पुश्तैनी पेशा ही रासधारी नाचना है। रासधारी और ख्याल के कथा प्रसंग समान होते हुए भी इनकी शैलियों में अंतर है। ख्याल साधारण जन की कृतियाँ होने से उनमें हाव-भाव तथा गीतों की परिपक्वता नहीं होती। रासधारी में काम करने वाले अपनी कला में बड़े प्रवीण होते हैं। इनमें उछलकूद तथा अनिश्चित और अनियंत्रित मुद्रायें नहीं होती। रासधारियों की मँडलियाँ एक गाँव से दूसरे गांव में घूमती हैं और बीस-पच्चीस रुपयों में लगभग सारी रात अपना तमाशा दिखलाती हैं। इनके सिर पर साफानुमा जरीदार पगड़ियाँ और शरीर पर लम्बे घेरदार झग्गे होते हैं। इसमें स्त्रियों का काम पुरुष ही करते हैं। इस संगीत नाट्य में प्रचलित संगीत की अनेक मनमोहक

तेजें गाई तथा बजाई जाती हैं। इस नाट्य में समस्त संवाद गीत नृत्यों के रूप में होते हैं।

नमूने के गीत

(१) राणी तेने जुलम कर डाला बनमें भेजे सीताराम।
बनमें भेजे सीताराम, बनमें भेजे सीताराम॥

(२) जोगी ने अलख जगायो राणीजी,
अलख जगायो हो राणी जी थारे आगे।

(३) बनमें तो जाय सीया बाड़ी लगाई,
मिरगो चुग-चुग जायरे।

तुर्रा कलंगी

घोसुन्डा और चित्तौड़ के पास 'तुर्रा कलंगी का खेल' नामक एक ख्याल प्रचलित है। तुर्रा के खिलाड़ी हिन्दू होते हैं और कलंगी के मुसलमान। दोनों ही ख्यालों की कथायें हिन्दू जीवन से संबंधित हैं। तुर्रा-कलंगी के अभिनेताओं के हाथों में नकली फूलों की छड़ियाँ होती हैं तथा उनकी पोशाकें मुस्लिम ढंग की होती हैं। गांव के किसी चौराहे पर एक भव्य रंगमंच का निर्माण होता है जिसे गाँव के लोग कलात्मक ढंग से सजाते-संवारते हैं। यह रंगमंच कला-कौशल की एक उत्कृष्ट कृति होती है। मंच के दोनों तरफ लगभग ४० फीट ऊंची बल्लियों के सहारे दो महल बनाये जाते हैं। जिनमें से एक में मलिकाएं तथा रानियां अभिनय करती हुई उतरती हैं और दूसरे से पुरुष-पात्र। बीच के रंगमंच पर ख्याल के सूत्रधार, जो बहुधा गांव के वयोवृद्ध भाट होते हैं ख्याल के पद गाते हैं और उन्हीं के सामने मंच के नीचे बैठे हुए शहनाई और नक्कारे वाले उनकी धुन बजाते हैं। अभिनेता उनके साथ ही रंगमंच के एक छोर से दूसरे तक गाते-नाचते हुए बढ़ते हैं और अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं।

गौरी नाट्य

राजस्थानी भीलों का यह एक प्रसिद्ध गीत-नाट्य है। यह इनका धार्मिक नाट्य है जो भाद्रपद से आश्विन तक चलता है। इस नाट्य के प्रमुख नायक भगवान भैरव हैं। गौरी नाट्य में भाग लेने वाले भील लगभग १॥ मास इसमें निरत रहते हैं। इन दिनों वे एक बार

भोजन करते हैं। हरी सब्जी नहीं खाते, मांस मदिरा का सेवन आदि नहीं करते। इस नाट्य में स्त्रियों का काम पुरुष ही करते हैं। इस नृत्य का महा नायक बूढिया होता है जो शिव का अवतार समझा जाता है। 'राइ माँ' उमा और पार्वती के रूप में होती है। इस नाट्य में शिव की प्रामाणिक कथा का कहीं प्रयोग नहीं होता है। अनेक काल्पनिक परन्तु युगों की परम्पराओं से युक्त कथा-प्रसंगों के आधार पर नाना प्रकार के खेल इस नाट्य में दिखलाये जाते हैं, जो हास्य-विनोद और कला-बाजियों के भी अच्छे नमूने होते हैं। यह नाट्य सुबह से शाम तक उस गांव के चौराहे पर होता है, जहां नृत्य में भाग लेने वाले भीलों के गांव की किसी भी जाति की लड़की ब्याही गई हो। उस लड़की के सुसराल वाले 'राईमाता (उमा पार्वती) को रुपया नारियल तथा अन्य मांगलिक पदार्थों से गोद भरते हैं। इस नृत्य-नाट्य के प्रमुख प्रसंग' बनजारा', 'भियांवड़', 'नटनटी', 'खेतूड़ी' ,'बादशाह की सवारी', 'खेड़लिया भूत' आदि हैं। ये विचित्र वेशभूषा और अंग-मुद्राओं में प्रस्तुत किये जाते हैं। प्रत्येक प्रासंगिक कथा-नाट्य की समाप्ति पर भैरव के प्रमुख पुजारी भोपा के शरीर में भैरवनाथ का प्रवेश होता है। मादळ और थाळ पर ताल बजता है और समस्त भील अभिनेता कलात्मक मुद्राओं में ठुमक ठुमक कर गोलाकार नाचने लगते हैं। गौरी संगीत-नाट्य अपनी शैली का एक ही नाट्य है जो समस्त भारतवर्ष के संगीत-नाट्यों से निराला है। सवेरे से शाम तक इसमें गीत गाये जाते हैं। इसके गीतों की संख्या १०० के लगभग है। कुछ गीत निम्नलिखित हैं—

(१) म्हारी बाळद लदवा दीजे रे हां हांरे दाणीजी।

(२) वणजारा रे मू समरू नै सारद माई ओ
गणपत रे पांवा लागूं रे।

(३) भोला भमरा रे तू तो कूड़ा खोदाई ऊरण व्है ब्याजे।

(४) मारी नार तमाखूड़ी मत पीवो

(५) म्हारै बोरिया वड़ै तो सोनी दो दिन मोड़ो घड़ रे,
मारा छैल भंवर री छैलकड़ी सिताब घड़ जेरे,
जाओ गाड़ी में और एक घड़ी रो गेलो रे।

कुछ गीत धुनों की दृष्टि से लगभग समस्त राजस्थान में थोड़े परिवर्तन से गाये जाते हैं। ये हैं मूमळ, पणिहारी, गोरबंद, काजळियो, ईंडोणी, कांगसियो, जलो आदि। इन्हें हम प्रतिनिधि धुनों के गीत कह सकते हैं। 'गोरबंद' जहां मारवाड़, बीकानेर और शेखावाटी में गाया जाता है वहां अजमेर के कंजर भी इसको सोल्लास गाते हैं। घूमर का गीत 'म्हारी घूमर छै नखराळी ए माय, घूमर रमवा म्हें जास्यां' किंचित शब्द एवं धुन-परिवर्तन से मारवाड़, मेवाड़, बीकानेर और शेखावटी के ऊपर छाया हुआ है। वैसे ही गणगौर का गीत 'खेलण द्यो गणगौर भंवर म्हानै पूजण द्यो गणगौर' मेवाड़, बीकानेर और मारवाड़ में उतना ही लोकप्रिय है और उसी धुन से गाया जाता है। 'गम गई ईंडोणी' और पणिहारी की धुनें जैसी जैसलमेर की ओर प्रचलित हैं वैसी ही मारवाड़, बीकानेर और शेखावाटी की ओर प्रचलित हैं। जो काजलिया शेखावाटी, बीकानेर में गाया जाता है वह मेवाड़ में भी आप उसी धुन में सुन सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन धुनों में इतनी शक्ति रही है कि रियासतों या राज्यों की सीमाओं को भी ये लांघ गये हैं और सर्वत्र लोकप्रिय बन गये हैं। इनकी धुनें भी प्राचीन हैं। 'लहरयार बीजूड़ो' भी बहुत फैला है। 'बाई का बीरा म्हानैं पीय-रियै ले चालोजी, पीयरियेरी घणी ओल्यू म्हानैं आवै' गीत की मादक धुन जितनी बीकानेर को मोहित किये हुये है उतनी ही शेखावाटी को भी। ऐसा अधिकतर हुआ है कि धुन वही रही है और गीत उसी धुन के अन्य अन्य भी मिलते हैं। उसी धुन पर दूसरा गीत है, देराण्यां जिठाण्या मिल पाणीडे नैं चाली ए संग लेली नणदल बाई। 'म्हारा बाबाजी रे मांडी गणगौर ओ रसिया...' बीकानेर, शेखावाटी और मेवाड़ में उसी राग में प्रचलित है तो वैसे ही 'म्हें तो थारा डेरा निरखण आई ओ.... अर्थात् जला गीत उसी प्रकार से मारवाड़, मेवाड़, बीकानेर और शेखावाटी में भी गाया जाता है। ओल्यूं का गीत 'ऊंची तो खींवै ढोला बीजली' मारवाड़, बीकानेर और शेखावाटी में समान धुन से गाया जाता है, तो उसी प्रकार पीपली 'बाय चल्या छा भंवरजी पीपलीजी' भी इन इलाकों में सर्वत्र छाई हुई है। 'कूंजाए म्हारो भंवर मिलाद्यो ए'— बीकानेर, मेवाड़ और शेखावाटी में समान राग से गाया जाता है। इसी धुन पर आश्रित है 'सपना रे, वैरी नींद गंवाई ओ'। बधावा के गीतों में 'आमली या आम्बो मोरियो, मेवाड़, बीकानेर, शेखावाटी

में उसी धुन में प्रचलित है तो 'म्हारे आंगण आम पिछोकड़ मरवो यो घर सदा ए सुहावणो' रेगिस्तान के बहुत से भागों में एक ही राग से गाया जाता हुआ सुनाई पड़ता है। स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले हैं कुछ हरजस और बारामासिये तथा पुरुषों के कई भजन एक ही धुन से समस्त राजस्थान में गाये जाते हुए सुनाई पड़ते हैं। सबदों के शब्द और धुन भी वैसी ही मिलती है। 'हे म्हारी हेली समझ सुहागण सुरतां नार लगन मोरी राम से लगी' सबद एक ही राग में राजस्थान में गाया जाता हुआ सुना जाता है। ऊपर प्रतिनिधि धुनों वाले गीतों को ढूंढ निकालने का प्रयत्न किया गया है।

यों तो राजस्थन में हजारों की संख्या में लोकगीत हैं। इतने बड़े समुद्र में से कुछ प्रतिनिधि मणियां चुनना बहुत कठिन है। ये गीत लगभग समस्त राजस्थान में गाये जाते हैं। इनको हम राजस्थान के प्रतिनिधि गीत कह सकते हैं। राजस्थान में कई रियासतें रही हैं अत-एव शब्दों में अन्तर होना स्वाभाविक है। पर भावों की दृष्टि से लगभग वे समान हैं। कुछ विषय के गीतों की संख्या बहुत अधिक है जैसे विवाह या परणेत के गीत। इसी एक विषय पर सौ से कम गीत नहीं हैं। इसी प्रकार रातिजगा के गीत शाम से सवेरे तक गाये जाते हैं। ये भी सैकड़ों की संख्या में हैं। हमने नीचे के विवरण में मुख्यतया उन्हीं गीतों को लिया है जो लोक संगीत की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। यह अवश्य कहा जायगा कि राजस्थान की संस्कृति इतनी विशाल है कि जिसमें हजारों गीत और सैकड़ों प्रकार की धुनें मिलती हैं। हमारा तो यह विश्वास है कि प्राचीन से प्राचीन धुनें भी इनमें मिलेंगी। प्रतिनिधि गीत इस प्रकार हैं—कुर्जां, ओल्यूं, काजळियो, गोरबंद, घूमर, गणगोर, तीज, मूमळ, जलो, रसिया, दारूड़ी, कळाळी, बारहमासा, ईंडोणी, पणिहारी, पपैयो, कांगसियो, बधावा, पीपळी, होली, शीतला, पावणा, विणजारा, दीवाली, पारसी, कामण, चौमासा, सपना, राति जगा, जच्चा (होलर), घोड़ी, बनड़ा, बनी, बीछूड़ो, भाँगड़ली, तमाखू, हींदो (झूला), तुलसी, विनायक, लहरियो, माहेरो (भात) आदि।

कुर्जां

कुर्जां एक सारस जैसा श्वेत बड़ा सुन्दर पक्षी होता है। उसे कूँजा भी कहते हैं। ये बड़ी ऊँची कतार में एक साथ उड़ती हैं। राजस्थानी

जीवन का यह भी एक सौन्दर्य रहा है। वियोगिनी स्त्री ने इस के द्वारा संदेश भेजे हैं। वैसे कूँजा न तो कबूतरों की तरह पत्रवाहक का काम करती है और न संदेश ही सुना सकती है किन्तु इस प्रकार के आख्यान भारतीय साहित्य में रहे हैं। नल दमयन्ती के प्रसंग में हंस, कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' (इसमें मेघ को ही दूत मान लिया जाता है) 'पद्मावत' में सूआ—सभी द्वारा संदेश पहुंचाने का उल्लेख मिलता है, इसी प्रकार राजस्थानी लोक जीवन में कुर्जां के द्वारा समाचार भिजवाया गया है। स्त्रियों द्वारा यह गीत वर्षा ऋतु में गाया जाता है। बोल हैं—

'कूंजा ये म्हारो भंवर मिलाद्यो ये।'

इसको पुरुष भी ढफ के साथ होली के अवसर पर गाते हैं। इसकी लय धीमी है।

ओल्यूँ

इसका मतलब याद से है। किसी की याद में ओल्यूँ गाई जाती है। बेटी की विदाई पर उसके घर की स्त्रियां इसे गाती हैं। विदा करते समय गाने से दुख हल्का हो जाता है। इसे स्त्रियां ही उस अवसर पर गाती हैं किन्तु गींदड़ नृत्य में पुरुष भी डंकों की चोट के साथ इसे गाते हैं। भिन्न-भिन्न भागों में ओल्यूँ के गीत निम्न प्रकार से मिलते हैं—

(१) ओल्यूँड़ी लगाई रे मारा सैंण (मेवाड़)।

(२) ओजी ओ गोरी रा लसकरिया ओल्यूँड़ी लगायर कोटे चाल्या जी ढोला (मारवाड़-शेखावाटी)।

(३) कँवर बाई री ओल्यूँ आवै ओ राज-(बीकानेर)।

(४) अेकरिये करला थारा, माल्जी पाछा जी मोड़, राजिंदा ढोला, ओल्यूँ घणी आवै म्हारा बावोसारी। (जोधपुर बीकानेर)।

(५) कटड़े अवलु रा मेहड़ला रे बरसे रे, कटोड़े जो अवलु री जाणो कालायण (जैसलमेर)।

काजळियो

काजल पर भी गीत निर्मित किया गया है। काजल आंखों में डाला जाता है। राजस्थान में आंखों में काजल डालने की प्रथा स्त्रियों में तो रही ही है, पुरुष भी कभी २ आंखों में डालते हैं। गीत की लय चलत की है। यह अकसर होली के अवसर पर चंग पर बजाया जाता है और

इसका कहरवे का ठेका रहता है। यह श्रृंगारिक गीत है। भारतीय संस्कृति में काजल सोलह श्रृंगारों में है। काजल राजस्थान की स्त्रियों का प्रमुख श्रृंगार है और नेत्रों के लिये लाभदायक भी। इसमें सारङ्ग के स्वर हैं। 'काजल भरियो कूंपलो कोई धर्यो पलङ्ग अध बीच कोरो काजळियो'।

गोरबंद

ऊंट की सजावट करते समय काठी के पास से यह गर्दन पर बांधा जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में यह गीत अधिक प्रचलित है। इसमें ऊंट का श्रृंगार-वर्णन मिलता है। इस गीत में ममत्त्व है और बहुत हृदयस्पर्शी भी यह है। यह राजस्थान का बड़ा लोकप्रिय गीत है। लगभग समस्त मरुस्थलीय प्रदेश में यह गाया जाता है-

'गायां चरावती गोरबंद गूंथियो,
भैस्यां चरावती पोयो म्हारा राज,
म्हारो गोरबंद लूम्वाळो !

अजमेर के सांसी-कंजर भी इसे गाते हैं। राजस्थानी ग्राम-जीवन का यह चित्र उपस्थित करता है। मारवाड़ की ओर घूमर नृत्य में भी बालिकाएं इसे गाती हैं।

घूमर और लूर

जब औरतें गोलाकार नृत्य करती हैं तब घूमर कहलाती है। यह कोटा, बूंदी, मेवाड़ और जोधपुर में अधिक प्रचलित है। मारवाड़ में इसे लूर कहते हैं। घूमर के साथ गाये जाने वाले १५-१६ के लगभग गीत मिलते हैं। इसकी बड़ी मोहक धुनें हैं। घूमर स्त्रियों का राष्ट्रीय नृत्य है। गणगौर के अवसर पर मेवाड़ में सुन्दर घूमर नाची जाती है। इसके गीत मेवाड़ में अधिक मिलते हैं। जैसलमेर की घूमर नक्काड़े पर होती है। सम्बन्धित जाति के अलावा इसे दूसरा कोई नहीं देख सकता। इसमें वधुएं नाचती हैं। जब औरतें थक जाती हैं तब लड़के डांडिया लेकर नाचते हैं। यह गणगौर के अवसर पर होती है। यहां घूमर के तीन प्रकार हैं।

(१) घूमर—इसमें साधारण स्त्रियां भाग लेती हैं।
(२) लूर—यह राजपूत स्त्रियों के द्वारा की जाती है।
(३) झूमरियो—यह बालिकाओं की घूमर है।

घूमर के साथ गाये जाने वाले जैसलमेर के ये गीत हैं—'गेंद गजरो', 'ओड़नी' इसमें ओड़ की स्त्री का वर्णन है, ओठीड़ो (ऊंट का सवार) नीमड़ा और नींबूड़ो। बोल इस प्रकार हैं—

(१) गूंथ लाया ए बाग री मालण गेंद गजरा।

(२) नींबूड़ो बावण वण आई रे लाल।

शेखावाटी जैसे भागों में जहां घूमर नृत्य नहीं होता वहां पुरुष गींदड़ नृत्यों के साथ मारवाड़ की घूमर का प्रसिद्ध गीत गाते हैं। घूमर के गीत इस प्रकार से गाये जाते हैं—

(१) म्हारी घूमर है नखराली ए माय, घूमर रमवा म्हें जाम्यां, (मारवाड़)

(२) म्हारी लहर छै नखराळी ए माय लहर रमवा म्हें जांग्या (मेवाड़)।

(३) सरवर पाणीडे नें जाऊं, नजर लग जाय(मारवाड़ और जयपुर)।

(४) खेलण दो गणगौर भंवर म्हानें पूजण दो गणगौर (मेवाड़)। यह गीत बीकानेर और जोधपुर की ओर भी गाया जाता है।

(५) लालर लेदो रे नौखोला म्हारो जीव तरसै (मेवाड़)।

(६) आसी ओ भर आप सुन्दर महल में (मेवाड़)।

(७) राजा थारें महलां कोयल बोले ढोला मारूजी (मेवाड़)।

(८) रगड़-रगड़ पग धोवती ओ रसिया, धोवती पिछोला थारी पाळ (मेवाड़)।

(९) भर लावो रे पाणी सागर रो (मेवाड़)।

(१०) हेली नावरी असवारी सजन राणा आवे छै (मेवाड़)।

(११) आज तो मेवाड़ो राणो आवसी ए मोली घूमर ले (मेवाड़)

राजलदेसर (बीकानेर) की एक ढोलण घूमर के गीत गाने में प्रवीण है। मेवाड़ में ढोलनें घूमर के गीत सुन्दर गाती हैं।

तीज

तीज का त्यौहार सारे राजस्थान में मनाया जाता है। श्रावण शुक्ला तीज को यह त्यौहार आता है। कई स्थानों में गणगौर की तरह ही तीज की प्रतिमा निकाली जाती है। वस्तुतः यह ऋतु का त्यौहार है। ऋतु का

महत्त्व ही इससे विशेष प्रकट होता है। यह बालिकाओं और स्त्रियों का त्योंहार है। इस दिन मेला भरता है। सर्वत्र हरियाली रहती है। इस लिए इसे हरियाली तीज भी कहते हैं। इस त्योंहार से पूर्व ही तीज सम्बन्धी गीत प्रारम्भ हो जाते हैं। तीज के गीतों में उल्लास बहुत है। राजस्थान में मुख्यतया एक ही फसल होती है अतएव वर्षा की फसल पर ही लोग निर्भर रहते हैं। अतः वर्षा के आगमन पर बड़ा हर्ष प्रकट किया जाता है। वर्षा शुरू होते ही घर गीतों से गूंज उठता है। किन्तु ये गीत मरुस्थलीय भागों में विशेष गाये जाते हैं। खेती संबंधी गीत भी गाये जाते हैं। बालिकाओं के भी गीत रहते हैं। तीज के अवसर पर हृदय को आंदोलित कर देने वाले गीत गाये जाते हैं। झूले के लिये बहनों की ओर से मनुहार की जाती है। तीज के अवसर पर विवाहिता पुत्री अपने पिता के घर आने की आशा रखती है; इसी प्रकार की भावना लोक गीतों में व्यक्त हुई है। तीज बालिकाओं का मुख्य त्योंहार है अतएव गीतों में भाई बहन का प्रेम अत्यधिक व्यक्त हुआ है। चौमासा के गीत और 'पीपली' भी इसी अवसर पर गाये जाते हैं। इनके संबंध में आगे विवरण दिया जायगा। मोर पक्षी को भी गीतों में याद किया गया है क्योंकि वर्षा के दिनों में उसकी कूक और छतरी देखने-सुनने की ही है। तीज के गीत १०–१२ की संख्या में हैं। तीज के सभी गीत बालि-काओं एवं स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। तीज के अवसर पर झूला डाला जाता है। स्त्री पुरुष झूलकर आनंद मानते हैं। तीज के अवसर पर बेटियों को उनकी ससुराल, सिंघारा भेजा जाता है। तीज के निम्न गीत मुख्य हैं—

(१) आई आई सावणिया री तीज गौरी ओ रमवा नीसर्‌याजी म्हारा राज (मेवाड़)।

(२) सावण तो आयो सह्यां में सुण्यों, आयोड़ो जेठ अषाढ़ मेहो झड़ मांडियो (जैसलमेर)।

(३) आई आई मां सावणियारी तीज लो, सामले रे सांवण धोया सासरे रे लाल (जैसलमेर)।

इसी भाव का गीत शेखावाटी और बीकानेर में भी गाया जाता है। 'आई आई सावणियारी तीज मनैं भेजी मां सासरेजी' उसके बोल हैं।

(४) चांदा तेरी चकमक रात जी कोई नणदलरी भौजाई पाणी नीसरी (शेखावटी)।

(५) यो कुण बींजे बाजरो ये बदली,
यो कुण बांधे मोठ मेवा मिसरी, सुरंगी रुत आई म्हारे देस।
और यह गीत बीकानेर, शेखावटी और मेवाड़ में सुना गया है।

(६) चांद चढ्यो गिगनार किरती ढल रही जी ढल रही (बीकानेर)।

(७) तीज्यां का दोय पांच पंद्रह तीज सुहली आई जी (बीकानेर, शेखावटी)।

गणगौर

राजस्थान में गणगौर का त्यौहार बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह धार्मिक है और सामाजिक भी। गणगौर के अवसर पर जो प्रतिमाएं निकलती हैं उनको राजस्थानी रूप दिया गया है। चैत्र शुक्ला तृतीया को समस्त राजस्थान में गणगौर का मेला भरता है। गौर की जो सवारी निकलती है उसमें पुरुष भी भाग लेते हैं। जयपुर, उदयपुर की गणगौर बहुत प्रसिद्ध रही है। इनमें उदयपुर की और भी अधिक है। गणगौर को भी बेटियों के सिवाय भेजा जाता है। गणगौर बालिकाओं और सधवाओं का त्यौहार है। यह बड़ी समृद्धि व्यक्त करता है। त्यौहारों में गणगौर के गीत सबसे अधिक हैं। इनकी संख्या हमारे देखने में लगभग ४० आई है।

राजस्थान के जीवन का चित्रण इन गीतों में पूरा है। गणगौर के कुछ गीतों की धुनें बड़ी सुंदर हैं। कुमारिकाएं भावी पति के लिए गौरी का पूजन करती हैं। इससे पतिव्रत का आदर्श यहां की स्त्रियों के सामने रहता है। गणगौर के चुने हुए केवल उन्हीं गीतों को नीचे दिया जाता है, जो धुनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं—

(१) खोपोली म्हारी सींप छाई, तारा छाई रात,
नाग भरी नवेला छाई राजा विरमादन के परसाद।

(२) म्हारे बाबाजी के मांडी गणगौर ओ रसिया
बड़ी दोय खेलबाने जावा द्यो।

(३) खेलण द्यो गणगौर भंवर म्हाने पूजण द्यो गणगौर,
ऐजी म्हारी सखियां जोवे बाट ओ हंजा ढोलाजी खेलण द्यो गणगौर।

(४) म्हारै माथैने महमद ल्यावो गुमानीड़ा ख्याली,
बालक धण गजरो भूली म्हैं तो भूल्या जी पातळिया थारी,
सेजां गुमानीढ़ा ख्याली सतरंज पर गजरो भूली।

(५) म्हारा हर्‌या ये भंवारा ये, गींवूला सरस वध्या।

(६) हरिये गोबर गोळी द्यावो मोत्यां चोक पुरावो।

(७) म्हारै माथै नैं महमद ल्याव म्हारा हंजामारू थाहीं रेवोजी।

(८) आज म्हारो गौर बनो नीसर्‌यो।

(९) ईसरजी तो पेचो बांधै गौरांबाई पेच संवारे ओ राज,
म्हे ईसर थारी साली छां।

(१०) ईसरदास वीरा लीलाड़ी पलाण कंठी लाज्यो जड़ावरी।

गणगौर के गीतों में बालिकाओं के भी कुछ गीत हैं। ये गीत सरल संगीत के द्योतक हैं और बालिकाओं के ही अनुकूल हैं।

मूमळ

यह राजस्थान का प्रसिद्ध लोकप्रिय गीत है। इसमें मूमळ का नखसिख वर्णन किया गया है। यह वर्णनात्मक गीत है। इसमें मांड स्वर लगते हैं। यह गीत शृंगारिक है। मूमळ लोद्रवा (जैसलमेर) की राजकुमारी थी। लोद्रवा से चार मील दूर उसका महल था जिसे लोग आज मूमळ की मेड़ी कहते हैं। मूमळ एक साहसी पति चाहती थी। सूमरे सोढों का सामंत ऊमरकोट के महेन्द्र ने उसकी प्रतिज्ञा पूरी की। किन्तु भ्रांत धारणा से मूमळ का अंत हो जाता है।

(१) म्हारी बरसाले री मूमळ, हालैनी ऐ आलीजे रे देस,

(२) नायो मूमळ माथईयोरे मेट सुं,
हांजीरै कड़ीयेरे राड़या मूमलड़ी,
केसड़ा........(जैसलमेर)।

(३) भंवर रोज चढ़े रे सिकार सैंयल मांजी मूमल रो बोलावो रे,
मांजो असल देतालु आजीजो मेहमेंदरो,
मांजो असल देतालु घर आव।

जलो और जलाल

वधू के घर से स्त्रियां जब वर की बरात का डेरा देखने जाती हैं, तब जला गीत गाया जाता है। इसकी ढाल (धुन, गायकी) लम्बी है। लय भी धीमी है। यह गीत गींदड़ में भी नृत्य के साथ गाया जाता है। जलाल के सम्बन्ध में दो-एक गीत जैसलमेर की ओर प्रचलित हैं। जला गीत भी बहुत लोकप्रिय है।

(१) म्हे तो थारा डेरा निरखण आई ओ, म्हारी जोड़ी रा जला।

(२) सईयाँ मोरी रे आयोड़ा सुणी जे रे जलालो देश में,
चमक्यारे च्यारे देश........(जैसलमेर)।

(३) हांरे जलाल खांने ऊगण दिसरा रे करे हलिया करू क्यारे,
हेकी जोड़ी रा जलाल.......(जैसलमेर)।

(४) जलो म्हारी जोड़ रो उदयापुर मालेरें, (जोधपुर)।
जला गीत अनुसंधान का विषय है।

रसिया

ब्रज की ओर गाये जाने वाले गीतों की एक विशेष धुन है। इसे रसिया कहते हैं। भरतपुर, धोलपुर की तरफ इनका प्रचलन अधिक है।

'माखन की चोरी छोड़ कन्हैया मैं समझाऊँ तोय,

उक्त छन्द के रसिये ब्रजवासी इधर सुनाया करते हैं।

दारुड़ी

शराब को कहते हैं। यह गीत राजा महाराजाओं, ठिकानेदारों, तथा राजपूतों के मद्यपी जीवन को व्यक्त करता है। ऐसे गीतों का प्रचलन रियासतें और ठिकाने समाप्त होने के साथ ही साथ उठ गया है।

'दारुड़ी दाखां री म्हारें छैल भंवर ने थोड़ी थोड़ी दीज्यो ए' प्रसिद्ध गीत है। यह राजपूतों की मजलिस में गाई जाती है।

कलाळी

कलाळ लोग शराब निकालने और बेचने का काम करते थे। ये ठेकेदार थे और आज भी हैं। कलाळी गीत में सवाल-जवाब हैं। एक

छैल कलाळी को अपने साथ चलने के लिये मनुहार करता है किन्तु वह साथ जाने को तैयार नहीं होती। इसमें शृंगारिकता और मनकी चञ्चलता दिखलाई गई है। इसकी गायकी भी धीमी लय की है अर्थात् विलम्बित की। इसमें स्वर भी सारंग और सोरठ के लगते हैं।

(१) चाँदड़लो भंवरजी चढियो गिगनार हाँ ओ भंवरजी वो कोई किरती ढळ आई गढ़ कै कांगरै जी म्हारा राज।

(२) दूसरी कलाळी विवाह के रातीजगे में प्रातःकाल गाई जाती है। इसकी लय कुछ चलत की है पर सुन्दर 'हे राजाराम की कलाळी'। जैसलमेर की ओर यह कलाळी प्रचलित है।

(३) म्हे तो थां नै गाढ़ा मारू हां जी ओ ओलख्या भुरजालो रै घणां रे घुड़लां की घमसाण रे।

(४) चांदड़लो चढ़ियो ढोला गढ़ गिगनार हो हांजी यो भंवरजी।

(५) किलाली ए मतवाली ए ढोला ने दारू दे, सारा नैनवां री ए ढोला ने दारू दे।

बारह मासा

इनमें बारह महीनों का चित्रण रहता है। राजस्थान की ऐसी रीति साहित्यसर्जना में भी रही है। इन बारहमासियों में राजस्थान का जीवन और संस्कृति व्यक्त हुई है। ख्यालों में भी बारह मासिये बहुत से आये हैं पर वे अधिकांश में शृंगारिक ही बनाये गये हैं।

स्त्रियों में जो बारा मासिये प्रचलित हैं वे प्रायः सब धार्मिक हैं। इनकी गायकी सरल है किन्तु साथ ही मधुर भी। इन बारामासियों में मुख्यतः कृष्ण और राम विषय को लेकर विरह के चित्रण किये गये हैं। श्री भगवतीप्रसाद दारूका ने भी बहुत से बारहमासिये लिखे हैं, जो द्रौपदी, रुक्मणी, मीराँबाई, हरिश्चन्द्र, ध्रुवजी आदि पर हैं। यों तो कई बारामासिये हैं किन्तु लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध बारामासिये निम्नलिखित हैं—

(१) किसन गये बनवास राम थारै मिलणैं की लग रही आस।

(२) 'म्हारी सुध लीज्यो ओ रघुपत रामजी सिया अरज करत है।' इसमें भैरवी की छाया है।

(३) हरि गुण गाओजी
भादों की तो रैन अंधेरी, गरज गरज डरपावैंजी।
दादुर मोर पपीहा बोले, सुआ सबद सुणावैंजी।

ईंडोणी

सर पर बोझा रखने के लिये यह कपड़े की बनाई जाती है। इसको राजस्थान में स्त्रियाँ बड़े कलात्मक ढंग से बनाती हैं। ईंडोणी के विषय को लेकर जो गीत प्रचलित हो गया है इसकी धुन 'मोहक' है। इसकी धुन बधावा के गीत 'इमली' से मिलती है। ईंडोणी का प्रसिद्ध गीत है 'पाड़ोसण बड़ी चकोर गम गई ईंडोणी'। जैसलमेर की ओर भी ईंडोणी प्रचलित हैं—

(२) आठ कपड़े री ईंढांणी रे,
मांजी हरी रे कसूम्बल रे।

पणिहारी

यह भी राजस्थान का प्रसिद्ध गीत है। इसकी बहुत मोहक धुन है। इस गीत में राजस्थानी रमणी का रूप दिखाया गया है कि वह अपने पतिव्रत धर्म पर कितनी अटल है। राजस्थान के जीवन और संस्कृति का इसमें चित्रण मिलता है। पनघट का राजस्थानी जीवन में एक मुख्य स्थान है। पानी भरने वाली स्त्री को पणिहारी कहते हैं। पणिहारी की धुन मादक है। कालबेलिये सांपों को मस्त करने के लिये पणिहारी, लूर, ईंडोणी आदि धुनों का ही विशेष प्रयोग करते हैं। जयदेव कृत गीत गोविन्द के कई श्लोक जैसे 'ललित ललित वनमाल, जय जय देव हरे' इसी धुन से गाये जाते हैं। पणिहारी गीत में निम्न प्रकार से कथा व्यक्त हुई है—एक स्त्री का पति परदेस चला जाता है। वह बहुत दिनों के बाद आता है। उसकी स्त्री पनघट पर पानी भरने जाती है। वह पुरुष जो अचानक आ जाता है उस स्त्री के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपने साथ चलने के लिये कहता है। स्त्री रुष्ट हो जाती है। घर पहुंचने पर अपनी सास से सारा हाल कहती है। इतने में उसका पति घर पर आ जाता है। कथा में रोमांस है और नाटकीय तत्त्व भी। गीत के विभिन्न प्रारंभिक रूप इस प्रकार हैं—

(१) कणी जी खुदाया कूआं बावड़ी ओ पणिहारी जी रे लो
चालो साथीड़ा रे लार बालाजी

(२) काळी रे कळायण ऊमड़ी ए पणिहारी ऐले
गुडला सा बरसे मेह सेणों लो (जैसलमेर)।

(३) पहला सासूजी थांने जांचण आई रै हाथ जोड़ समझावै।
(बीकानेर)।

कांगसियो

कंवे को कहते हैं। दो एक तरह के कांगसिये धुनों की दृष्टि से श्रेष्ठ मिलते हैं। गणगौर के गीतों पर भी एक कांगसिये पर गीत मिलता है। बालों का श्रृंगार भारतीय संस्कृति का एक विशेष अंग रहा है।

(१) म्हारै छैल भंवर रो कांगसियो पणिहार्यां ले गई रे।

(२) ईसरदासजी रो कांगसियो म्हें मोल लेस्यां राज,
गोराँ बाई रा लाम्बा लाम्बा केस, कांगसियो बाई रै
चितां चढ्यो जी राज।

बधावा

राजस्थान के गीतों में बधावों के गीतों का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। बधावों के गीत १४-१५ के लगभग हमारे देखने में आये हैं। सब की रागें भिन्न-भिन्न हैं। बधावे राजस्थान में कई अवसरों पर गाये जाते हैं। विवाह के समय जो बधावे गाये जाते हैं उनकी संख्या सबसे अधिक है। भात (माहेरा) के भी बधावा के गीत हैं। पुत्र-जन्मोत्सव पर भी बधावे गाये जाते हैं। गणगौर के भी बधावे होते हैं। बहू को विदा करते समय भी बधावा गाया जाता है। बहू का बिदा होना यहां बधाई एवं आनन्द की ही वस्तु माना जाता है। बधाओं के गीतों में बड़ा आनंद और उल्लास व्यक्त हुआ है। ये भाव और संगीत दोनों की दृष्टि से आन्दोलित कर देते हैं। बधावों के गीत प्रीत के गीत हैं तो आदर्श भी इनमें मिलता है। 'आज म्हारी इमली फल रही' गीत में सारे परिवार का ही आभूषण के रूप में मूल्य किया गया है। राजस्थान को ऐसे गीतों पर साहित्य और संगीत दोनों की ही दृष्टि से बड़ा गर्व है।

(१) पहल बधावै ए सैंया म्हारी म्हें गया राज (विदाई)।

(२) झिर-मिर झिर-मिर सायबा मेवोजी बरसै
नानीजी बूंद सुहावणी जी।

(३) म्हारै आंगण आम पिछोकड़
मरवो यो घर सदा ए सुहावणो (विवाह)।

(४) आम्बाजी पाक्या नींबू फल लाग्या, डाळ गई असराळ
सखीरी नींबू फल लाग्या (विवाह)।
(५) पोलीड़ा पोल उघाड़जी म्हानैं आवा दे (विवाह)।
(६) बधावो जी राज बधावो, बधावो बेटो जायो (विवाह)।
(७) आज म्हारी इमली फल लीन्हीं (विवाह, पुत्र जन्मोत्सव)।
(८) हां हां भंवर म्हांनैं सुपनोजी आयोजी राज
सुपना रा अरथ बताओजी राज (विवाह, पुत्र जन्मोत्सव)।
(९) दोय डूंगरा बिच बेल पसरी (विवाह, पुत्र जन्मोत्सव)
(१०) जग जीत्या ये आनंद बधावणा (विवाह)।
(११) थैं तो धन धनजी देवीलालजी राजपूत
बैणांरो मान बड़ो करयो (भात)।
(१२) सात सहेली ऊबी बारणै बनड़ी घर में घुस रहीजे (विवाह)।
(१३) पर घरियां री मांडण म्हारी धीय आपणैं
घर मांडण म्हारी कुल बहू (विवाह)।
(१४) ऐ मोती समदरिया में नीपजैं, सोवैंगा इसरदासजी रैं कान,
बधावोजी म्हारो गौर को (गणगौर का बधावा)।
(१५) ईसरदास बरां बधावण रैं गोरल जायो छै पूत (गणगौर)।

पीपली

पीपल का वृक्ष राजस्थानी समाज में बड़ा शुभ और पवित्र माना जाता है। यह बड़ा आदरणीय पेड़ है। पीपली स्त्रीलिंग है। एक पीपली पुत्र जन्मोत्सव के समय गाई जाती है। दूसरी तीज व चौमासा के गीतों में गाई जाती है। दूसरी ज्यादा लोकप्रिय है किन्तु पहली की राग भी कम सुंदर नहीं। "बाय चल्या छा भंवरजी पीपलीजी, हांजी ढोला होय गई घेर घुमेर।" यही पीपली प्रसिद्ध है। इससे दो तीन अर्थ निकलते हैं। हे भंवर जो पीपली तुमने लगाई वह अब बढ़ कर घेर घुमेर हो गई है, छाया का आनन्द लेने का जब अवसर आया तब तुम नौकरी पर चले (२) जो प्रीत तुमने लगाई वह प्रीत गहरी हो गई है, जब गहरा प्रेम हो गया, तब तुम चले (३) यौवन की पूर्ण अवस्था

की ओर संकेत है। इसमें पत्नी का प्रेम दिखलाया गया है कि वह सब कुछ पति पर वार देती है। पीपली की लोकप्रियता का कारण साहित्यिकता भी है। इसकी रेकार्डें भी बन गई हैं। दूसरी है—

हे म्हारे उत्तर-दिखण री ए, जच्चा पीपली,
हे म्हारे पूरब नमी-नमी डाल रे।

परणेत (विवाह)

परिणय से यह शब्द बना है जिसका मतलब विवाह से है। राजस्थान में विवाह के गीत सबसे अधिक हैं। प्रत्येक नेगचार पर गीत हैं। भिन्न भिन्न स्वरों व रागों के गीत हैं। परणेत के गीतों में विदाई के गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं और रुला देते हैं। बधावा के गीत भी इनमें आ जाते हैं। विवाह के गीत भिन्न-भिन्न विषयों के हैं। इनका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। राजस्थान में विवाह बड़े उत्साह से होता है। इस पर पैसा भी खूब खर्च होता है। पीठी, हलदात, सेवरा, घोड़ी, विनायक आदि पर ही गीत नहीं हैं, प्रत्येक प्रसंग पर गीत हैं। इनकी संख्या ५० से तो कम नहीं हैं। यहां धुनों की दृष्टि से जो अच्छे गीत हैं उनको ही लिया जा रहा है। विवाह के एक महीने पूर्व से ही गीत प्रारम्भ हो जाते हैं। इनमें बनड़ा, बनड़ी आदि के ही गीत प्रधानतः रहते हैं।

(१) म्हारो फलसड़ो कुण खुड़काइयो... (निमंत्रित अतिथियों का आगमन)।

(२) रिध सिध दिवलो संजोइयो........(संध्या)।

(३) जेये चंवरी श्री रामचढ्यो बहु सीता,
ये थारो ये कंथ पुण्यू को चांद (फेरा लेने के समय)।

(४) बनड़ो उमायो ए बनी थारै कारणै
जोड़ी की उमायो ए वड़ गौतम थारै रूप में (निकासी)।

(५) माथै मैं महमद पहरल्यो कुम्हारी तो रखड़ी को छवि न्यारी
ए रायजादी ए कुम्हारी (चाक पूजने के समय)।

(६) म्हारो मिजल्यो रुण भुणो बाजो बड़ोजी राज (विदा)।

(७) एक सौ पान सुपारी ड्योढसै (निमंत्रण)।

(८) यो कुण ढोल बजाइयो, मेहा बरसण लाग्या ।

(९) आंखड़ली रे फरूके ये म्हारा काग (प्रतीक्षा) ।

(१०) जाणों म्हें तो लाख बधाई बांट...... (प्रतीक्षा) ।

(११) परण पधार्‌यो म्हारो दुल्हो बीनणी जे(बहू लेकर आने के वक्त)

(१२) ए मां सांझ कहूँ एक सांभली नूं क्रियर बसी थी नार(संध्या)।

(१३) बनखंड री ये कोयल बनखंड छोड़ चली (विदा) ।

(१४) बड़ी ए बड़ी बाबुलाल फिरे जी बनजाथो गीगराज की ओ
माय विहाण राजा राम का (सवेरा) ।

विवाह के गीतों में कुछ और भी गीत बच रहे हैं उनका हम आगे उल्लेख कर रहे हैं जैसे कानण, मान के गीत, विनायक, घोड़ी, बना, बनड़ी आदि ।

होली

होली का उल्लास बीकानेर और शेखावाटी में विशेष देखा जाता है। इन दिनों ये इलाके आगयुक्त हो जाते हैं। जन साधारण में यहां बड़ा उत्साह देखा जाता है। होली के अवसर पर पुरुष भी गाते हैं और स्त्रियां भी। होली के गीत जो ढफ पर पुरुष बजाते हैं वे चलत के हैं। कहरवे के ठेके पर ये गीत गाये जाते हैं। इनमें धमाल भी शामिल हैं। धमालों की संख्या भी बहुत है। ४०-५० धमालें तो हमने संग्रहीत की हैं। स्त्रियों के भी कुछ गीत चलत के हैं जैसे 'होली खेलो रे चतर-भुज प्यारे बड़ी होली खेलो रे।' 'ढप कोई को बजायो जी बालम रसिया ढप कोई को।' 'ढप पूंचे के बल बाजेजी रंगीलो चंग बाजेगो।' ढप पर बजाई जाने वाली धमालें ये हैं—

(१) उठ मिलले भरत भैया हर आये, उठ मिलले,
हर आवेर किसन आये उठ मिलले ।

(२) लिछमण के रे बाण लग्यो रे सकती लिछमण के ।

(३) राजा बल के ओ राज मची रे होली, राजा बल के ।

ढप पर पुरुष जो अन्य चलत के गीत गाते हैं वे ये हैं—

(१) बालम छोटो सो (काजलिये की धुन से मिलती) ।

(२) बगीचो सिंच्या को, जी पर बैठ्या मोर, पच्यास ।

(३) और रंग देरै वीरा और रंग देरे मेरी चोराणी कै दाय कोनी आयोरे लीलगर और रंग दे (सारंग की छाया) ।

(४) मरज्याऊं रै मोदुड़ा तेरी घाली, बाजै मेरी पैजणी झमाझमसैं।

(५) तूतो भूरे को काको ।

(६) मेरो मन पीहर जायबानैं ।

होली के अवसर पर स्त्रियां जो गीत गाती हैं वे ये हैं—

(१) गौरी के बदन पर कुण मारी पिचकारी जी ?

(२) होळी तो माता गढ सैं उतरी,
कोई हाथ कांगण माथै मोर ये रायां की होली ।

(३) होली लाई ए फूलां की झोली झिरमिरियोले ।

(४) माथै नै महमद ल्याश्रो रंगरसियां,
रखड़ी बैठ घड़ाश्रो रंग रसिया ।

होली के समय गींदड़ नृत्य होता है उसमें भी कुछ गीत गाये जाते हैं । उनका पीछे उल्लेख हो चुका है । कुछ और भी हैं जैसे—

(१) कठैं सैं आई सूंठ कठै सैं आयो जीरो
कठैं सैं आयो ए भोली बाई थारो बीरो ।

(२) आज म्हानैं देवरिये सैं गैर खिलाश्रो ए माय
लूहर रमबां म्हें जास्यां (मारवाड़ की लूर का गीत) ।

शीतला

होली के आठ दिन बाद शीतलाष्टमी का त्यौहार मनाया जाता है । शीतल रखने वाली शक्ति के रूप में इसकी उपासना की जाती है । शीतला देवी (चेचक) बोदरी भी देवी के रूप में पूजी जाती है । इस पर गीत बहुत अधिक नहीं हैं । शीतला पूजने आते जाते समय रास्ते में दूसरे प्रकार के गीत गाये जाते हैं वे गायकी की दृष्टि से मध्यम श्रेणी के हैं । गीतों के नमूने ये हैं । 'बाग लगाइयो पना मारू बाग लगाय, उजळी बतोसी गौरी धण सैं सह्यो हे ना जाय ।' शीतला सम्बन्धी गीत—

(१) बना ल्यूं सेहूल माता की।
(२) पेडूळ मेडूळ नीमड़ियें ए माय।
(३) माता ये दुर्लीचंदजी री पाग मलामत राखो ये।

पावणा

किसी घर में ब्याह जाने वाले व्यक्ति से सम्बन्धित जो गाये जाते हैं, वे पावणा कहलाते हैं। ये गीत भोजन कराते समय तथा उसके बाद गाये जाते हैं। भोजन कराते समय जो गीत गाये जाते हैं वे ५-७ की संख्या में हैं किन्तु उसके बाद मनोरंजनार्थ जो गीत सुनाये जाते हैं उनकी संख्या अधिक है और गीतों ही द्वारा यह मनोरंजन डेढ़ दो घंटे तक किया जाता है। छोटी बालिकायें भी जीजा सम्बन्धित गीत गाती हैं। ये सरल धुनों के होते हैं।

(१) हां रे बाला हूण सरवरिया री पाळ जंवाई धोवें धोतियां जी म्हाराज।
(२) थाया थाया थाळ परोस दिया भानजी (भोजन के समय)।
(३) प्यारा पावणा थो राज म्हारै जीमवा नैं आव।

साळियां, जीजा सम्बन्धी जो गीत गाती हैं उनकी धुनें सरल होती हैं—

जीजा बोल तो सही मेज के सिराणैं साळी एकली खड़ी।

कामण

जादू टोने को कहते हैं। लोकगीत रीतिरिवाजों, पुरानी प्रथाओं, विश्वासों और परम्पराओं के रक्षक हैं। राजस्थान के बहुत से हिस्सों में वर को जादू टोनों से बचाने के लिये कुछ डोरे आदि पहनाये जाते हैं। कामण ३-४ ही देखने में आये हैं। किसी जमाने में इनका बहुत अधिक महत्व रहा होगा। कामण विवाह के अवसर पर ही सुने गये हैं।

(१) कांकड़ आया राइवर थर हूर कांप्या राज।
(२) कांकड़ आय थिराज्याजी राज कामणिया।

(३) 'नींद घणेरी' गीत में भी जादू टोने का असर दिखाया गया है। 'रिमझिम करती महल पधारी तो जागतड़ो सोय रयो मोरी भुवाये नींद घणेरी।'

(४) ""कूकड़ी काचो सूत, जाय बांध्यो नायण को पूत, हार्‌यो ए। (वर और वधू को जब जुआ खिलाया जाता है तब वधू पक्ष की ओर से वर को हराने के लिये यह कामण का गीत गाया जाता है)।

(५) 'धीरा रीजो रे नादान कामण आज कराला' (मेवाड़)।

चौमासा

तीज के गीतों का विवरण देते समय हम चौमासे से सम्बन्धित कुछ गीतों का उल्लेख पीछे कर चुके हैं। राजस्थान के रेतीले भागों में जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर और शेखावाटी में चौमासे का बड़ा महत्त्व है। वर्षा के आगमन पर ही गीत शुरू हो जाते हैं और तीज के त्यौहार तक गाये जाते हैं। रेगिस्तान के इलाके में चौमासा सबसे अधिक सुहावना समय होता है। अतएव चौमासे के गीतों का यहां बड़ा महत्त्व है। सावण, लहरिया, हींडा (झूला), मोर, तमाखू, केवड़ा, खेती की बोवाई सम्बन्धी गीत मुख्यतः गाये जाते हैं। ये गीत हर मोहल्ले में गाये जाते हैं—

(१) कानीराम बीरो हींडो घलायो, बाई सीता हींडण आई रे।

(२) ओरे रंगीलो धण रो केवड़ो जी राज,
ओतो वायो वायो पान दुपान म्हारो राज।

(३) यो कुण बीजै बाजरो ये बदली ""।

(४) हां जी म्हारा सायबा इण आमड़लारी डाळ
हिंडोलो राजन घालस्यांजी म्हारा राज।

(५) सावण आयो ए म्हारा सोजतिया सरदार, भंवर म्हानें पीवर मेलो ए।

(६) सावण तो आयो सइयां मैं सुण्यो ।

सपना

सपने हमारी निगाह में ४ देखने में आये हैं किन्तु वे प्रसिद्ध हैं। सपने में आदर्श गृहस्थी का चित्रण मिलता है। एक सपना प्रेम-सम्बन्धी है जिसमें स्त्री ने अपने पुरुष को सपने में देखा है। पहला सपना बधावा गीत में है, इसमें प्राकृतिक सौन्दर्य भी साथ साथ मिलता है—

(१) हां हां भंवर म्हानैं सुपनो जी आयो जी राज
सुपना रो अरथ बताओ जी राज।

(२) सूती थी रंग महल में, सूती नैं आयो जंजाल
भँवर सुपना मैं देख्याजी।

(३) सुपनो तो आयो सरव सुलखणो जी।

(४) सपना में मारूजी इन्द्र घड़ूक्यो,
मानक सरवर हद भर्योजी (मेवाड़)।

रातीजगा

विवाह एवं पुत्र जन्मोत्सव अथवा किसी मनौती के मनाने पर रात भर जाग कर गीत गाने की प्रथा राजस्थान के अधिकांश भागों में है। इसे रातीजगा कहते हैं। आजकल कुछ भागों में रात के १२ बजे तक ही स्त्रियां गाती हैं। फिर सवेरे ३-४ बजे उठकर गाती हैं। इस प्रकार बहुत से गीत लुप्त होते जारहे हैं। रुणादे, आमलदे, सती, जैतलदे, भोमिया, केसरिया, भगता सिव, सनेही ढोला पितर (पूर्वज), भैंरुजी, सेडलमाता, नावलिया, माता (दुर्गा), हनुमानजी, गणेशजी आदि के गीत रातिजगा में गाये जाते हैं। इनकी संख्या भी सैंकड़ों की है। फिर भी कुछ गीतों के नमूने दिये जारहे हैं—

(१) काओ माताजी थानै कोण बलमाया ओ (मेवाड़)।

(२) म्हारा हरिये वनरा कूकड़ा—मुर्गा (मेवाड़)।

(३) माताजी रा मन्दर आगे केवड़ो ए माय।

(४) खोड़ाजी बावजी थें कठै बलाम्बिया ?
म्हारो तेल बळयो आखी रात। (मेवाड़)।

(५) अम्बर जाग्या देई देवता, धरती पर वासक नाग,
ओ झालर बाजै राजा राम की। (प्रातःकाल के समय)।

(६) गांव धणी को सायबा हुकुम मंगावोजी
सायबा भांगड़ली रै बुवाओ म्हारा राजन भांग प्याओजी।
(भांग)।

(७) माता कै भवन में जीओ नारेळां रो बिड़लो (माताजी पर)।

(८) सेडल मेरी सेडल माता तू कित चाली ? (सेडल माता)।

(९) सांचा पित्तर थारै अंग चढ़ै (पूर्वज)।

(१०) कोठे सैं आयोजी बड़ीजी प्यारा पावणा (पूर्वज)।

(११) घड़ दे म्हारा अजब लुहार्‌या दीवलो जे।

(१२) वारी ओ भोम्यां थारै नाम ने (भोमिया)।

(१३) कोठे तो वाजा ये कंवर के बाजियो (केसरियो)।

(१४) पांच बरस की होई राज कंवार,
गुड़िया तो खेले बाई जैतलीजे (जैतल)।

(१५) हार गावां के गौरवै वो कंवर रेवड़ियो चरायबां जाय
भभूतो सिध बागां में (भभूतोसिध)।

(१६) सनेही ढोला घरं आव (मरवण)।

(१७) विणजारा ओ हां रै लोभी लोग दिसावर जाय
थानैं सूत्यां ना सरै विणजारा ओ (विणजारा
प्रातःकाल के समय)।

(१८) बाबाजी हुकुम करावो बावाजी हुकुम करो तो
पोखर न्हायस्याँजी (आभळदे)।

(१९) बैठ्या बावोजी तखत विछाय कागदिया तो आया जी बावाजी रे
हाडै राव का (सजना)।

(२०) बाड़ विचाळै ये उमादे रानी पीपली जैंके छै अड़वड़ पान
(उमादे)।

(२१) राव रतनसिंह घर आई छै धीय जोसीड़ा नै पूछण वाई री
भुवा गई (जैतल)।

जच्चा

पुत्र जन्मोत्सव से जो सम्बन्धित गीत हैं वे जच्चा के गीत अथवा होलर के गीत कहलाते हैं। इनकी संख्या भी २०–२५ है। इन गीतों में नव जात शिशु के वस्त्र, जच्चा के वस्त्र, पुत्रजन्म की खुशी, गर्भ की पीड़ा आदि चित्रित हैं। पुत्र जन्म के समय घूघरी बाँटने की भी प्रथा राजस्थान में है।

(१) होलर जाया ने हुई छै बधाई
थे म्हारा वंस बधायो रे अलबेली जच्चा ....(मेवाड़)।

(२) राजीड़ा लाल चुड़ो पहराव।

(३) गीहूँ ये चणा की घूघरी रँधाव। (घूघरी की धुन अच्छी है इसकी रेकार्ड भी भरी जा चुकी है)।

(४) गींगा मोल्या म्हारा लाल...।

(५) ये चलणों स्यो मुगणीरा यो सायब म्हारे मन बस्यो जी।

(६) प्यारी लागे कुल बहू ओ ललना (इसमें सारंग राग की छाया है)।

(७) रंग महल बिच जच्चा होलर जायो ये पीलारी मौज ये।

(८) हलवाँ हलवाँ बोलो राज धीमाँ धीमाँ चालो राज।

(९) हाँ रे गींगा गींगे का बाबोजी दुलाल (बच्चे की टोपी संबंधी)।

(१०) अन्न नहीं भावेजी पियाजी म्हाने अन्न नहीं भावेजी
(गर्भ की अवस्था)।

(११) दिल्ली शहर को मायबा पीळो मँगाद्योजी
(पीळे का यह गीत बड़ा प्रसिद्ध है इसमें पीलू राग के स्वर हैं)।

बिणजारा

रंगिस्तानी भागों का यह प्रसिद्ध गीत है। वैसे वहां यह रातीजगा में स्त्रियों द्वारा भी गाया जाता है। अन्य लोग भी इसको प्रातःकाल के समय विशेष गाते हैं। ऊण्टवाले ऊँटों पर बैठ इसे गाया करते हैं और लम्बी मंजिलें खुशी से पार कर लेते हैं। इसमें बिणजारे और बिणजारी

के प्रश्नोत्तर हैं। विणज से यह शब्द बना है। विणजारी विणजारे को दूर देश व्यापार करने के लिये जाने को प्रेरित करती है। दोनों में परस्पर प्रेम भी बहुत व्यक्त हुआ है—

'विणजारा ओ, हाँ रै लोभी लोग दिसावर जाय,
थानैं सूत्या न सरै विणजारा ओ।'

माहेरा (भात)

बहिन के लड़के या लड़की की शादी के समय भाई उसको चूनड़ी ओढ़ाता है और भात भरता है। इस प्रसंग से सम्बन्धित गीत भात के गीत कहलाते हैं। भात विवाह का ही एक अंग है। भात के गीत भाई और बहिन का हृदय द्रावक प्रेम व्यक्त करते हैं। बहिन भाई के लिये गीतों में शुभ कामना करती है। गीतों के बोल इस प्रकार हैं—

(१) सात सुपारी पान रो बिड़लो भतियां नै रै बीरा
नूतण जाय, राजिन साथ लियो।

(२) गोटा को दावण मेरी सासू ताणी लाजे रे।

(३) एक बीरो मेरो आयो मेरै मन भायो।

(४) आज म्हारो वीरोजी कांकड़ वस रह्या।

(५) गङ्गा कै धोरै रे बीरा जमना रे धोरै
बीच बसे मेरा भाई।

(६) थे तो धन धन जी ......भैणाँ रो मान वड़ो करयो।

बच्चों के खेल-गीत

लड़के-लड़कियों के जीवन में खेल उनकी एक मुख्य प्रकृति के रूप में हैं। इन खेलों में गीत और कविता होने से अधिक सरसता हो जाती है। इन गीतों की राग साधारण है फिर भी उनमें लय है—

(१) कान कतरनी, कान कतरनी छब्बक छैया छब्बक छैया, बोल
मेरा भैया।

(२) टम्पो घोड़ी फूल गुलाब रो।

(३) काकड़ बेल मतीरा पाक्या टींडसियां का टोरा लाग्या,
राजाजी राजाजी खोलो कुँवाड़ (छोटे बच्चों का)।

(४) मछली मछली कितणो पाणी ? हाँ मियाजी इतणो पाणी।
(छोटे बच्चों का)।
(५) म्हारा म्हैलां पांछ कूण है ?

लोरियाँ

लोरियों का महत्त्व बच्चों के चरित्र निर्माण में कम नहीं है। बच्चों को सोते समय रात्रि को बड़े-बूढ़े लोरियाँ सुनाया करते हैं। ये गीत सरल धुनों के हैं।

(१) राम भज बीरा राम भजरे, राम बिना दुख पावेंगो।
(२) तालिया बजावो भइ रावे गोविंद गाश्रो।
(३) सोई रे गीगा सोई, तेरी मा करे रसोई।
(४) श्याम सुन्दर मदनमोहन, राधेगोविंद भजराधे गोविंद।
(५) थारी मां पाणी गी, घर में गंडकड़ा बाळी गी।

दिवाली

दिवाली के १५ दिन पहले ही लड़के और लड़कियों की टोलियाँ प्राय: सबके घर गाते हुए निकल जाती हैं। लड़कों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों को 'लोवड़ी' अथवा 'हरणी' भी कहते हैं और लड़कियों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों को 'घड़ल्यो' कहते हैं। ये मेवाड़ की ओर प्रचलित हैं—

लड़कों के गीत

(१) हरणी हरणी थूँ क्यूं दूबळीए चाल म्हारे देस, काठा गवां की घूघरी रे, घोळी तली को तेल।
ऊँडी कूडी ऊँडी बावड़ी रे मांय भँवर की वेल, पाणी भरवा वाली पातळी रे, चवड़ो ढीलो मेल।

लड़कियों के

(१) गाडा नीचे चँवळा बाया, ऊगा छोटा मोटाजी।
(२) घड़ल्यो म्हारो लाडलो, सैर में भागो जावरे भाई।
(३) घड़ल्या रे घड़ल्या तू कठे सैं जनम्यो ?
(४) अल्या गल्या में रोहिड़ो फूल्यो सिरीके संज्या फूलियो राज।

विनायक

विनायक माँगलिक देवता हैं। किसी भी शुभ काम को करने के पहले विनायकजी पर ही गीत गाया जाता है। उनको मनाया जाता है ताकि काम की सिद्धि हो, काम की सफलता प्राप्त हो। विवाह के अवसर पर विनायक का गीत गाकर सिद्धिदाता विघ्नहर्ता विनायक को प्रसन्न किया जाता है।

(१) गढ रणत भँवर सें आओ विनायक करोयेने चीति विड़दड़ी।

(२) चालो हो गजानन आपां जोसी रे चालाँ।

कार्तिक स्नान के गीत और तुलछाँ के गीत

कार्तिक स्नान में एक मास पर्यंत गीत प्रातःकाल के स्नान के बाद कूए पर या जलाशय पर गाये जाते हैं। शाम को बालिकायें तुलसी के गीत गाती हैं। उसके बिरवे (पौधे) के पास मंदिर में दीपक जलाती हैं। कार्तिक स्नान के गीत हैं 'रसोई', 'आरतो', 'हर हर गंगा', 'थाळी' 'सुसराड़ो, पथवारी, आदि। इनमें थाळी की धुन बड़ी मनोहर है। प्रातःकाल यह बड़ी कर्ण प्रिय लगती है—

कातीकड़े को मगन महीनो, गाओजी किसनहर की थाळी थाळी ओराया।

रामजी नें न्यूतण राधका गई जी, ओढ कसूमल साड़ी साड़ी ओरया।

कुछ गीतों की पंक्तियाँ बोलकर ही कह दी जाती हैं जैसे 'हर हर गंगा, लहर तिरंगा, तेरी लहर मेरा सीतल चंगा'।

इन गीतों में कुछ धार्मिक, पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्य भी बतलाये गये हैं।

स्त्रियां एक महीने कातिक मास नहाती हैं उसी के अनुसार स्त्रियां प्रातःकाल ४ बजे के लगभग गीत गाती हैं।

तुलसी भी कृष्ण की स्त्री मानी गई है। ये पौराणिक विचार हैं। तुलसी की आज भी हिन्दुओं में बड़ी मानता है। गीत इस प्रकार हैं—

(१) मैं तनैं पूछूँ तुलछा राणीं कण तेरो मँदर चिणायोये ? कण तेरे मंदरिये में नींव दिराइ ये ?

(२) म्हे थानैं पूछाँ म्हारा सुरीओ ठाकुरजी ये पेचो कोठे बाँध्या जी मथरा जी का वासी।

घोड़ी

वैसे तो विवाह के उत्सव में भी गाई जाती है किन्तु घोड़ी का उल्लेख स्वतंत्र भी बहुत से राजस्थानी गीतों में मिलता है। घोड़ी पर ही चढ़कर विवाह में तोरण मारा जाता है। घोड़ी का शृंगार-वर्णन तथा उसकी चाल, हिनहिनाहट आदि का चित्रण गीतों में हुआ है। घोड़ियाँ सौराष्ट्र और सिंधु देश की प्रसिद्ध रही हैं।

१. इंदरियो थर्रायो ए घोड़ी मदरी मदरी चाल।
२. घोड़ी म्हारी चंद्र मुखी इन्द्र लोक सुँ आइ ओ राज।
३. घोड़ी तो चढ म्हारो कँवर कानीराम घर आइयो।
४. घोड़ी तो चंचळ वनड़ा चालसी जो हाँजी वना गढ मुलतान सैं आई नवल वना की घोड़ी जी चरेंजी।
५. के म्हारी तोजण आपें आई, आपैं आई, के राजा राम पठाई ओ राज।

वना-वनी

यह प्रसंग भी विवाह का ही है किन्तु इस पर स्वतंत्र गीत भी अच्छी संख्या में हैं। राजस्थान में वना प्यार का और आदर सूचक शब्द है।

किशोर-किशोरी के लिये वना-वनी शब्द का प्रयोग होता है। वना कुलीन वर का द्योतक शब्द भी है। यों जिसकी शादी होने वाली है उसको ही खासतौर से वनड़ा या वनड़ी शब्द की संज्ञा देकर गीत गाये जाते हैं।

(१) हस्ती कजळी देशां रा ल्याज्यो,
नवल वना वो सिरदार वना।
(२) वना मारे प्यारो लागे सा,
दशरथ राजकुमार वनो मारे प्यारो लागे (मेवाड़)।

(३) म्हारा बागां में नारंगी रो रूख,
जीं पर वनड़ी खेलती जी राज।

(४) बनड़ो उमायो ये बनी ये थारै कारणै
जोड़ी को उमायो ये बड़गौतम थारै रूप नैं
(विवाह)।

(५) ले चालूं म्हारै देस ये
नवल वनी ले चालूं म्हारै देस (विवाह)।

पपैयो

पपीहा एक प्रसिद्ध पक्षी है, जिसका हिन्दी साहित्य में भी बहुत उल्लेख हुआ है। वर्षा ऋतु में राजस्थान में भी यह पक्षी बोलता हुआ सुना जाता है। पपैये का जो प्रसिद्ध गीत है उसमें एक युवती किसी विवाहित युवक को मार्ग भ्रष्ट करना चाहती है। किन्तु युवक उसको अन्त में यही कहता है कि मेरी स्त्री ही मुझे स्वीकार होगी। यथार्थ और आदर्श का इसमें सुन्दर मिश्रण है।

(१) भंवर बागां में आज्योजी, एजी म्हारो
नाजुक जीव घबरावै पपैयो बोल्यो जी।

(२) बोले रे पपैयो हांजी रे पिवड़ो रे
गाढा रे मारू मग दिये रे।

पपीहे का गीत राजस्थान के कई भागों में सुना जाता है।

हिचकी

ऐसी धारणा है कि किसी के द्वारा याद किये जाने पर हिचकी आती है। जब हिचकी आती है तो दूर रहने वाले अपने संबंधी की ओर अनायास ही ध्यान चला जाता है।

(१) म्हारा पियाजी बुलाई म्हनै आई हिचकी
(अलवर-मेवात का यह प्रसिद्ध गीत है)।

(२) म्हारा साईनाड़ा रो जीव घबरावे,
हिचकी घड़ी घड़ी मत आवै।

चौक-च्यानणी

राजस्थान में भादवा सुदी ४ गणेश चतुर्थी को बाल त्यौहार मनाने की प्रथा भी है। शेखावाटी और बीकानेर की ओर यह उत्सव बड़े उत्साह से मनाया जाता है। उत्सव का स्थान गुरुओं की पाठशालायें हैं। बालक चेहरे बनाते हैं और आनन्द मनाते हैं। यह उत्सव लगभग एक मास पूर्व से ही मनाया जाता था किन्तु अब १०-१५ रोज पहले से। गुरु के साथ ये विद्यार्थी विद्यालय में पढ़ने वाले लड़कों के घर घर जाते हैं। वहां गीत गाये जाते हैं। साथ में नगाड़ा भी रहता है जिसे बजाते चलते हैं। इस उत्सव को विकसित करने की आवश्यकता है। रास्ते भर ये बालक गीत गाते जाते हैं। कुछ चुने हुए लड़के पहले गाते हैं पीछे से सब लड़के उस पंक्ति को दोहराते हुए गाते हैं। युगल रूप में डंके भी परस्पर भिड़ाते हैं। ये डंके बड़े सुन्दर बने हुए होते हैं। चौक च्यानणी के गीतों के बोल हैं—

(१) चौक च्यानणी भादूड़ो,
करदे माई लाडूड़ो,
लाडूड़ें में पान सुपारी।

(२) सकती बाण लग्यो लिछमण के।

(३) गौरी पुत्र गणेश मनाऊँ,
साल गिरह गणपति का गाऊँ।
भादू सुदी चौथ बुधवार,
जन्म लियो गणपत दातार॥

राजस्थान में बालकों का यही एक उत्सव व त्यौहार दिखलाई पड़ता है। इसमें बालकों का सम्मान किया जाता है।

राजस्थान के विभिन्न भागों के गीत

जैसलमेर के गीत—जैसलमेर में आवागमन के साधन बहुत कम हैं। वहां के पुरुष कई दिनों से परदेश से लौटते थे। अतएव उनके वियोग में गाये जाने वाले गीतों को 'मोरावा' कहते हैं। 'रणमल' एक खंड काव्य है। यह मेलों में गाया जाता है। विवाह के अवसर पर दरोगणियां भी इसे गाती हैं। 'सूवटिया' द्वारा भीलनी स्त्रियां पति के पास

संदेश भेजती हैं। 'सुमेरू सोढा' में एक स्त्री सोढे के लिये संदेश भेजती है। 'उमरलो' में प्रेमिका उमरले की प्रतीक्षा में गाती है। इनके अलावा कठड़ो, ओठीड़ो, सूरजड़ी, घूमर, नीमड़ी, पपहिया, इंडोणी, पायलड़ी, दुपट्टा आदि हैं। 'इंडोणी' गणगौर का गीत है, 'दुपट्टा' शादी के अवसर पर सालियां गाती हैं। पपीहा बरसात का गीत है। इनके अलावा 'लाखा', 'तमाखू', 'मूमल', 'धतूरो', 'घूड़लो' आदि अन्य प्रसिद्ध गीत हैं।

बीकानेर के प्रसिद्ध गीत—करेलड़ी, ओलंगड़ी, सायबाजी, एलची, सियालो, सपनो, हिचकी, नींबूड़ो, नींदड़ली, कलाळी, ओगणियो, जला, पपीहा, नागजी, बीछूड़ो, मजमूनी, कसुम्बा, चौधरी, पीतलियो पलाण आदि प्रसिद्ध एवं प्रतिनिधि गीत हैं।

मेवाड़ के प्रसिद्ध गीत—घूमर, पटेलिया, लालर, माछर, नोखीला थारी ऊँटां री असवारी, हेली रंगरो बधावो, लहरियो, बीछियो, (पैरों का आभूषण), नावरी असवारी, शिकार, नागजी, भैरूं, पनजी, वालो देस; आदि यहां के लोकप्रिय गीत हैं।

गीतों की दृष्टि से मारवाड़, बीकानेर और शेखावाटी तीनों बड़े समृद्ध हैं। यहां भिन्न भिन्न धुनों के सैकड़ों गीत गाये जाते हैं। शेखावाटी में ५०० के लगभग गीत हमारे सुनने में आये हैं।

अब हम ऐसी जातियों को लेंगे जो शौकिया अपना समय संगीत में देती हैं। लोक-संगीत इनके जीवन का मुख्य अंग बना हुआ है। अपनी आजीविका के काम से विश्राम लेकर प्रायः प्रति रात्रि को ये लोग गीत और भजन गाते हैं। ये स्वान्तः सुखाय गाते हैं और इनसे अपना मनोरंजन करते हैं। दूसरों को भी इन्हें सुनकर बड़ा आनंद मिलता है। शान्त रात्रि में इनका स्वर दूर से भी बड़ा सुखद लगता है। ये जातियाँ हैं,—बळाई, भोमिये, चमार, नायक, मेहतर, रैगर, कोली, कुम्हार, गाड़िया लोहार, आदिवासी आदि। बळाई और भोमिये कबीर और रेदास के पदों को गाने में कुशल हैं। ये इकतारे और करताल (खड़ताल) गीतों के साथ बजाते हैं।

उच्च वर्ग या सवर्ण लोग आपाधापी, धन, पद और प्रतियोगिता की दौड़ धूप में जीवन के सच्चे आनंद से बहुत दूर चले गये हैं। किन्तु आदिवासी लोगों ने लोक-संगीत को अपने गले का हार बना रक्खा

है और यही उनका एक मात्र सहारा भी है। मेवाड़ में भील एक महीने तक गौरी के गीत सुनाते रहते हैं किन्तु अर्थोपार्जन की दृष्टि से नहीं। उनके दैनिक जीवन में भी गीतों का बहुत बड़ा भाग रहता है। उच्च वर्ग में तो विशेषतया त्यौहारों और उत्सवों पर ही स्वान्तः सुखाय गीत गाये जाते हैं। सामुदायिक गीत गाने का अवसर तो बहुत कम मिलता है। मंदिरों में कभी कभी कुछ स्त्रियां हरजस सामूहिक रूप में गाती हैं। होली के अवसर पर चंग के साथ तथा मंदिरों के कीर्तन तथा भजन के रूप में पुरुष वर्ग सामुदायिक गीत गाते हैं। हमारे समाज में जाति पांति, छूआछूत, ऊंच नीच, छोटे बड़े का बड़ा भेद भाव रहा है। फलस्वरूप व्यक्ति विशेष की अहमन्यता यहां मुख्य देखी जाती है। शिक्षा के अभाव के कारण भी जन साधारण में सामाजिक भावना नहीं आ पाई है। अतएव सामुदायिक लोकगीतों की गुंजाइश कम ही रही है। वे एक मोहल्ले में इकट्ठी होकर गा सकती हैं। किन्तु सामुदायिक रूप से गाने का अवसर तो उनके लिये नहीं के बराबर ही आता है। त्यौहार, विवाह आदि पर भी एक ही कुटुम्ब व जाति की स्त्रियां ही अक्सर गाती देखी गई हैं। फिर भी स्वान्तःसुखाय गीतों के अवसर और उदाहरण यहां पर्याप्त मिलते हैं। नीचे इनका विवरण दिया जाता है।

(१) स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों के अवसर—

होली, तीज (चौमासा), गणगौर (घूमर), विवाह, पुत्र-जन्मोत्सव, रातिजगा, हरजस, वार नामिये, शीतला, पाहुणा के शुभागमन पर, कार्तिक स्नान, सन्ध्या, जात, जडूला एवं मेला।

(२) बालिकाओं के गीतों के अवसर—

गणगौर, जीजा के आगमन पर, चानाचट के त्यौहार पर, तीज (झूले के गीत), होली, दिवाली।

(३) बालकों के गीतों के अवसर—

चौक च्यानणी (गणेश चतुर्थी महोत्सव), डफ के गीत, ख्याल, मंदिरों के रात्रि जागरण के भजन, दिवाली।

(४) पुरुषों के गीत—

भजन, होली पर चंग के गीत, ख्याल, मन्दिरों के रात्रि जागरण, कीर्तन आदि।

राजस्थान में पौराणिकता और धार्मिकता की प्रधानता रही है। यहां बहुत बड़ी संख्या में मंदिर और देवालय हैं। इनमें भक्ति सम्बन्धी गीत और भजन प्राय: होते रहते हैं। अब इनका प्रचलन अवश्य कम हो रहा है। यहां प्रति दिन भजन होते रहते हैं। भजन भी बहुत बड़ी संख्या में यहां रचे गये हैं। मीरां, कबीर, दादू, रैदास, चंद्रसखी के भजन और हरजस यहां घर-घर में प्रचलित हैं। बख्तावर के भक्ति पूर्ण सोरठे रेगिस्तानी भागों में बहुत गाये जाते हैं। नाथ पंथियों का निर्गुणी साहित्य भी इधर बहुत गाया जाता है। पिछले वर्षों में चूरू और फतहपुर की ओर भानीनाथ के पद बहुत विख्यात हुए हैं। मंदिरों में अमावस्या, ग्यारस आदि को रात्रि जागरण भी हुआ करते हैं। इन गीतों में कुछ गीत शास्त्रीय संगीत के समीप हैं। भजनों की संख्या भी बहुत बड़ी है। राजस्थानी भजनों का साहित्य संगीत की दृष्टि से कम संपन्न नहीं। स्त्रियों में जो भक्ति संबंधी गीत प्रचलित हैं वे सरल संगीत के द्योतक हैं। उनमें राम, कृष्ण, ध्रुव, प्रह्लाद, हनुमानजी, आदि से संबंधित गीत अधिक गाये जाते हैं। वृद्ध स्त्रियां अपने साथ ही गायकी और गीत ले जा रही हैं, इनकी रक्षा करने की बड़ी आवश्यकता है।

स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले भक्ति संबंधी गीतों को हम हरजस का नाम दे रहे हैं। इनमें बारहमासिये भी हैं। कुछ प्रसिद्ध हरजस निम्न प्रकार से हैं—

(१) रामा मावस आगै अरज कराँ थे सुणज्यो जी गिरधारी (मावस)।

(२) ओ हो रै बंदा हर क्यूँ ना भजले, गोविन्दो क्यूँ ना भजले
कितनी कै देर लगे हर भजताँ ?

(३) कैंया लम्बा दिया पसार ?

(४) मिलता जाज्यो भी गुमानी
गेजी थारी सूरत है नखराली।

(५) मन मेरा संध्या सुमरण कर रै
हरि को भजन नित कर रै (संध्या)।

(६) मनवा नाय विचारी रै।
तेरी मेरी करताँ ऊमर खो गई सारी रै।

कलकत्ते से राजस्थानी भजनों का एक बृहद संग्रह 'राजस्थानी भजन सागर' नाम से श्री रघुनाथप्रसादजी सिंहानियाँ के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। इसमें हज़ार से भी ऊपर भजन हैं। इस दिशा में छोटे मोटे अन्य भी प्रयत्न हुए हैं। पिछले वर्षों में स्वामी ब्रह्मानन्द के भजन भी प्रचलित हुए हैं। पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले कुछ प्रसिद्ध और प्रचलित भजन इस प्रकार हैं—

(१) दलाली हीरा लालन की, म्हारे सतगुरु दीन्ही रे बताय।
(२) एक दिन उड़ ताल से हंस फेर नहीं आवेगो।
(३) वन में चरती बकरी रे बोली आयो कसाई ले ज्याखी।
(४) पिया के फिकर में सुरता भई दिवाणी, नैन गमा दिये रोय।
(५) हे म्हारी हेली समझ सुहागण सुरताँ नार
लगन मोरी राम से लगी।
(६) पापी के मुख सैं राम कोन्या नीसरे केसर मिल गई गारे में।
(७) चामडे की पूतळी भजन करले, सिया राम रटले।
(८) राम मोरे रङ्गरेज चुनड़िया मोरी रङ्ग डाली (कबीर)।
(९) पीले रे प्याला होय मतवाला, सदा मतवाला,
प्याला प्रेम हरी रस का रे।
(१०) एक दिन बजे नगारा कूचका क्यों गफलत में सोता है (पारवा)।
(११) हर भज हर भज हीरा परखले समझ पकड़ नर मजबूती
अटल तख्त पर खेलो हासरा और वार्ता सब झूंठी
(निर्गुण भजन)।
(१२) सन सब्दां झड़ लाई हो संतो म्हारा,
ज्ञान घटा झुक आई होजी (सबद)।

किसी पूर्ण वृद्ध के देवलोक हो जाने पर शव के साथ सामुदायिक रूप से पुरुषों द्वारा नाना प्रकार के भजन गाये जाते हैं। ये सभी शांत रस और जगत की निस्सारता से सम्बन्धित हैं। राजस्थान में होली, सुरता, पारवा, सबद आदि के गीत भी बड़े लोकप्रिय और प्रसिद्ध हैं। स्वान्तःसुखाय भक्ति सम्बन्धी गीतों के गायकों में बळाई, चमार और नायक प्रधान हैं जो अपने इष्टदेव रामदेवजी, गोगाजी आदि की बिरुदावली गाते हैं। मीराँ बाई के भजन गाने में बैरागी साधु बड़े प्रसिद्ध हैं। निर्गुणी भजन गाने में नाथ पंथी साधु नामी हैं।

अध्याय ४

आदिवासियों के गीत

राजस्थान के दूसरे भागों से आदिवासियों के लोकगीत भिन्न हैं। वे सरल होते हैं और इनमें स्वर का प्रसार भी बहुत सीमित होता है। केवल राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों में ही ये लोकप्रिय हैं और इनकी अपनी विशेषताएं हैं। उनकी कुछ धुनें यद्यपि बड़ी सरल और अविकसित हैं तथापि वे बड़ी मोहित करने वाली हैं और वे हमारा ध्यान उस समय की ओर ले जाती हैं जब संगीत अपने उत्पत्ति-काल में था। इनमें कुछ आदिवासी इस प्रकार हैं—भील, मीणें, बंजारे, गरासिये, और सहरिये। इनके गीत साधारणतया इनके दैनिक जीवन से संबंधित रहते हैं और आमतौर से नृत्यों के साथ गाये जाते हैं। गीतों में अक्सर स्थायी ही मिलती है। किसी-किसी में ही अन्तरा रहता है। प्रति गीत-पंक्ति के साथ टेक रहती है। अधिकतर गीतों की धुनें एक सी ही मिलती हैं। कुछ शब्द भी प्रति पंक्ति के साथ दोहराये जाते हैं।

भील व मीणे

इनके जीवन में संगीत का बहुत बड़ा स्थान है। जो युवक नाचना गाना नहीं जानते, उनके विवाह में बड़ी अड़चनें आती हैं। मेहमान के आने पर ये उसका नाच गा कर स्वागत करते हैं। होली के अवसर पर गांव में आये हुए शहरी अतिथियों का स्वागत भील स्त्रियां नाच गाकर करती हैं। किसी भील के घर यदि बालक पैदा हो तो अतिथियों का ये सुमधुर गीतों से स्वागत करते हैं। शहर से अपने गांव लौटते हुए भील भीलनियां गाते हुए अपने मार्ग की थकान मिटाते हैं। मेलों के ऊपर भीलों के गीतों का जाल सा बिछा रहता है। भील-गीत बहुधा नृत्यों से सम्बंधित रहते हैं। कुछ ही गीत ऐसे हैं जिनका नृत्यों से संबंध नहीं है जैसे धार्मिक गीत जो अपने आराध्यदेव की आराधना में भील लोग इकतारे और खंजरी पर गाते हैं। इन नृत्य गीतों के विषय प्रेम, वीरता, चोरी, लूट, खेती, भगवद् भक्ति तथा भीलों के विविध वीरता पूर्ण कृत्य हैं। ये लोग गीत बहुत जल्दी बना लेते हैं। किसी भी नई वस्तु को अथवा

नये आदमी को देखने पर ये गीत बनाना शुरु कर देते हैं। ये अपने पास कैंची, काच, तलवार या कमर में कटार रखते हैं। भीलों के संगीत में रात्रि के जागरण विशेष उल्लेखनीय हैं। ये जागरण बहुधा बच्चों के चूड़ाकरण संस्कार के उपलक्ष में होते हैं। सम्बन्धित परिवार के यहां गांव के सभी लोग शनिवार की रात को एकत्रित होकर रात भर नाचते गाते हैं। इन गीतों में भैरवनाथ का गुणानुवाद होता है और वे बहुधा इकतारे और खंजरी के साथ गाये जाते हैं। इन गीतों के स्वर अन्य गीतों के स्वरों की अपेक्षा अधिक मधुर होते हैं। नाच के गीतों में ओज और गति होती है और जागरण के गीतों में कोमलता और गम्भीरता का पुट विशेष रहता है। भील हिन्दू त्यौहारों को भी बड़े उत्साह और आनंद से मनाते हैं। उक्त समय पर वे मस्ती से नाचते गाते हैं। थोड़ी संख्या में इकट्ठे होने पर ये गाना शुरु कर देते हैं।

डूंगरपुर-बांसवाड़ा के भील मीणों के गीतों में सादगी और स्पष्टता रहती है। इन गीतों की बोली वागड़ी है, जो दक्षिण पश्चिमी राजस्थान में बोली जाती है तथा राजस्थानी और गुजराती के मिश्रण से बनी है। अधिकांश गीत नृत्यों के साथ गाये जाते हैं, एक जगह बैठकर गाये जाने वाले गीत नहीं के बराबर हैं। प्रायः ये गीत तत्काल ही रचे जाते हैं और प्रत्येक पुरुष अपनी ओर से एक एक पंक्ति जोड़ता जाता है। इनकी रचना की दौड़ और भावराशि बहुत अधिक विस्तृत नहीं होती, इसलिये इनके गीतों में अन्य ग्राम गीतों की तरह गूढ़ार्थ और दार्शनिक तत्त्व भी नहीं होते। वे जैसा जीवन जीते हैं, वैसे ही गीत रचते हैं। उनमें किसी तरह का आडम्बर और रहस्य नहीं हुआ करता।

उत्तरी मेवाड़ के भीलों के गीत संगीत की दृष्टि से अच्छे हैं। इनके साज मादळ और थाली हैं। ये गोरी बड़े शौक से नाचते हैं। इनके गीत भी मधुर हैं। इनके गीतों में कई प्रकार की धुनें भी मिलती हैं। डूंगरपुर और बांसवाड़ा के भील बिना साज के ही प्रायः गीत गाते हैं। इनके गेर नृत्य में ढोल बजता है। ये गोरी भी कभी-कभी नाचते हैं। उधर के भील प्रायः अपने को भील कहलाने में अधिक गर्व का अनुभव करते हैं। कभी कभी मादळ भी बजाते हैं। ये हमेशा हाथ में धनुष और बाण, तरकस या बंदूक रखते हैं। इनकी कविता अथवा गीत-रचना

से बड़ी रुचि रहती है। इनके गीत संगीत की दृष्टि से हलके हैं। मेवाड़ के उत्तरी भीलों का प्रसिद्ध नृत्य-नाट्य व संगीत-नाट्य गौरी है। इसके कुछ प्रसिद्ध गीत नीचे दिये जा रहे हैं। नीचे लिखे गीत कांजरी और मान्या जोगी के प्रसंग के हैं —

(१) ऊंचा राणाजी रा गोखड़ा रे नीचे पीछोला री पाळ पटेल्या मार्‌यो जाईला रे;
मार्‌यो तो जाइला माळ मेरे, कलंगी झोला खाय पटेल्या।

(२) वनजारा-वनजारी के प्रसंग का गीत—
वनजारा रे मुँ जातरी वणियाणी, या थारै संगड़े लागी रे
वनजारी ए थुँ चालै तो ले चालूँ या राँडरी नाय धण रे

(३) देवी अम्बा जब प्रकट होती है, उस समय का गीत—
देवर म्हारा रे दीखै पीयर रा रूँख, देख म्हानै ओल्यूँ आवै
भावज म्हारी ए मती कर पियरियारी खां तो
भावज थानैं जतनाऊं राखूँ ए

(४) गौरी शुरु निम्न गीत से की जाती है। जब गायक देवताओं की पुजा करते हैं उस समय का यह गीत है—
"उठ परभाती दौड़ी ए वाड़्यां जावै तुँ वेगी ए वाड़्यां जावै
हजारी ए मालण मोगरो
काची तो पाकी मारी कलियाँ हैं मती तोड़ मालण
हजारी ए मालण मोगरो।

उत्तरी मेवाड़ के भीलों के प्रसिद्ध गीत निम्न प्रकार से है। इसे स्त्री और पुरुष साथ में मिलकर गाते हैं; नाम है 'हमसीड़ो'

(१) मंगरे चालरे हमसीड़ो, मूळी लावो रे हमसीड़ो
सेर में चालोरे हमसीड़ो, गेहूँ गोळ मोलाओ रे हमसीड़ो
देवी री पूजा करो रे हमसीड़ो।

(२) जब भील खेत की खुदाई पर जाते हैं तब यह गीत गाते हैं—
'कांधे कदाली माथै टोपलो ए स्याली,
चाली कसुम्बा रे खेत मियाली,
जाटणी ए छोरी खेत चालां ए।

गेहूँ रे चणारा रोटला ए ख्याली
माथे नकी री आ चाट मियाली।

नीचे डूँगरपुर-बांसवाड़ा के भीलों का गीत दिया जा रहा है। यह गीत भील जाति के सामाजिक उत्सवों पर जब स्त्री पुरुषों का समुदाय एकत्रित हो जाया करता है, नृत्य के साथ साथ स्त्री पुरुषों द्वारा सम्मिलित रूप से गाया जाता है। गीत बहुत लम्बा है। कुछ पंक्तियां दी जा रही हैं।

(१) रई ने क्यां बोले है रे, देखो मारी ढालड़े रमे
बार पालां पजुगा है रे, " " " "
कबल्यो गार जोड़ो है रे, " " " "
ये भायां नी जोड़ी है रे " " " "

निम्नलिखित गीत भी स्त्री-पुरुषों द्वारा सम्मिलित रूप में नृत्य के साथ साथ ताली बजाते हुए गाया जाता है।

(२) रई ने क्यां बोले, मोर डुंगरिया परसाथ
डूँगरा देखलो डूँगरो " "
आग्ल्या नो सल्यो " "
ढोली ढुडोली " "
माथा में पागेड़ी " "

नीचे दिया हुआ गीत अन्य भील गीतों की भांति सामूहिक रूपसे नृत्य व ताल के साथ २ गाया जाता है। यह गीत डूँगरपुर-क्षेत्र का है।

डूँगरपुर ने थोक माँ मानु गामडुँ कालागमेलो
डूँगरपुर ने केनु राजथाँजे " "
" माँ ने बाढ़ी राजु तु राज " "
बाढ़ी राज नां कोटां खाली पड़ियां " "

सहरिये

आदिवासियों में इनका स्थान नीचा है। ये कद में छोटे और रंग में काले और शरीर में दुर्बल होते हैं। ये निर्धन हैं और तन को पूरा ढक भी नहीं पाते। इनका खानपान, रहन-सहन, वस्त्र-आभूषण, घरबार आंगन तथा दीवारें कला-शून्य होती हैं। दिन-रात की अपनी आर्थिक

समस्याओं के कारण ये नाच-गान बहुत कम कर पाते हैं। त्यौहार, धार्मिक पर्व तथा देवी-देवताओं का पूजा पाठ भी रस्म पूरी करने के लिये ही करते हैं। किसी समय अन्य आदिवासियों की तरह इन्होंने भी नाच-गान द्वारा स्वर्गीय आनन्द का अनुभव किया होगा। जिन सहरियों का जीवन अपेक्षाकृत सम्पन्न है—वे अपने त्यौहारों को आज भी मस्ती से मनाते हैं। इनके मुख्य त्यौहारों में श्रावण की अमावस्या, दशहरा तथा होली है। इन अवसरों पर ये खूब नाचते-गाते हैं। होली के अवसर पर सब मिलकर विविध प्रकार के फगुओं को गाते हैं। इन लोगों में भजन गाने की विशेष प्रथा नहीं। विवाह शादी पर जो ये गीत गाते हैं वे नीरस और कलाशून्य हैं। ये कोटा, झालावाड़ में पाये जाते हैं।

बिणजारे

यह घुमन्तू जाति है और एक स्थान से दूसरे स्थान माल लाद कर विणज करती है। वणजारों की आठ उपजातियां अपने देश में विद्यमान हैं। मुछकटे वणजारे जो जाति के मुसलमान हैं अधिकतर कोटा-बूंदी की तरफ विचरते हैं। इन वणजारों का व्यापार-धंधा पहाड़ी प्रदेशों और घाटियों में विशेष है जहां मोटर आदि यातायात की पहुँच नहीं है। ये ऊँचे कद के होते हैं और सिर पर दो-तीन रंग के कपड़ों का गुँथा हुआ साफा बाँधते हैं। तन पर अंगरखी पहनते हैं और गले में चीड़ के हार। वणजारियों की चोलियाँ कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। होली, दिवाली, गणगौर, दशहरा तथा रक्षा बंधन ठाट से मनाते हैं। दशहरा ये नृत्य-गान से मनाते हैं। दीपावली, होली भी बड़े उत्साह से मनाते हैं। वैसे भी उमंग आने पर ये लोग नाचने-गाने लगते हैं। इनके यहां शादी में गीत गाये जाते हैं। गणगौर भी वणजारों का एक बड़ा लोकप्रिय त्यौहार है। लड़कियाँ मिट्टी की गणगौर बना कर पूजती हैं और गाती हैं। बाँसवाड़ा और कुशलगढ़ में इन्होंने बसना शुरू कर दिया है। मेवाड़ में फतहसागर और भोपालसागर के पास भी बस गये हैं।

गरासिये

इनकी कुछ उपजातियां ये हैं रेद्र, भोइया, डोमर आदि। इनके मुख्य देवी-देवता चामंड, भैरव और काला-गोरा हैं जिनको वे सभी

अवसरों पर बड़े आनन्द और भक्ति से पूजते हैं। इनके कुछ मेले इन देवी-देवताओं से सम्बन्धित हैं। मेले इनके जीवन के प्रमुख अंग हैं। इन मेलों में ये नाच और गान करते हैं। होली के अवसर पर ये चंग-नृत्य करते हैं और निम्न स्तर के शृंगारिक और प्रेम-सम्बन्धी गीत गाते हैं। इस नृत्य में औरतें शरीक नहीं होतीं। वे केवल मर्दों के पीछे-पीछे एक समूह में चलती हैं और अपने गीत गाती हैं। इनके वालर नृत्य गणगौर के त्यौहार के समय होते हैं। एक में पुरुष और स्त्री साथ में नाचते हैं और सामूहिक रूप में गाते हैं। दूसरे में केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। इसमें भी स्त्रियां सामूहिक गान गाती हैं।

अध्याय ५

पेशेवर लोकगीत-गायक और वादक जातियाँ

राजस्थान में दो रूपों में लोक-संगीत मिलता है। एक है पेशेवर रूप में और दूसरा है सामुदायिक रूप में।

निम्नलिखित जातियाँ संगीत को पेशे के रूप में अपनाये हुए है। पीढ़ियों से ये संगीत को अख्तियार किये हुए हैं। अतएव इनकी गायकी में बड़ा लालित्य मिलता है। इन लोगों ने युगों तक राजस्थान की सुन्दर गायकी की परम्परा को निभाया है। ये लोग विशेष अवसरों पर अपने जजमानों एवं विवाह-शादी के अवसरों पर अन्य लोगों का मनोरंजन करते रहे हैं। इनकी कुछ जातियां निम्न प्रकार से हैं—

१—रावल

यह जाति चारणों को अपना जजमान मानती है। उनको ये खेल-तमाशा दिखाते हैं। सर्दी के समय ये लगभग १२ व्यक्तियों के समूह के रूप में गाँव-गाँव में जाते हैं। वहां ये अपना प्रदर्शन करते हैं। ये गाने-बजाने का काम करते हैं और रम्मत भी करते हैं।

२—डूम अथवा डोम

यह भाटों से उत्पन्न एक मुसलमान फिरका है, ऐसा सर एच० एम० इलियट का मत है। मारवाड़ में ये मिरासियों तथा मुसलमान ढोलियों के फिरकों से अलग नहीं माने जाते हैं। मिरासी तथा ढोली इनको नीचा मानते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत नाजुक देखी गई है। ये भी गाने-बजाने का काम करते हैं।

३—राणा

मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार ढोली जयपुर में राणा कहलाते हैं। राणा लोगों का कथन है कि वे रण में धूंसा (नगाड़े) पर चोट मारते थे इसलिये राणा कहलाये। पिछले कुछ वर्षों तक राणाओं द्वारा यह काम

विवाह के अवसर पर भी हम देखते रहे हैं। शेखावाटी में राणा नगाड़ा बजाने का काम करते हैं और इस कला में वे बड़े दक्ष हैं। वहाँ ये लोग ठिकानेदारों द्वारा संरक्षित किये जाते थे। मंडावा में दुर्गा, हणमान और फीएडा राणा नगाड़े के काम में बहुत अच्छे हैं। जाखल के मेंह राणा शेखावाटी के सबसे श्रेष्ठ ख्याल गायकों में है। शेखावाटी में मिरासी मुसलमान भी नगाड़ा बजाने के कारण राणा कहलाये जैसे प्रसिद्ध ख्याल-लेखक और अभिनेता स्वर्गीय नानू राणा। राणा गाने-बजाने का भी काम करते हैं। विवाह-शादी के अवसर पर शहनाई के साथ तथा ख्यालों में भी ये लोग नगाड़ा-नगाड़ी बजाते हैं। इनके वैवाहिक सम्बन्ध अपनी ही जाति में होते हैं। ये राजपूतों का सा जीवन बिताते हैं और उनसे संबंधित हैं। इनके राजपूत राजाओं की विरत है। ये राजपूतों से ही अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। इनमें शराब का भी व्यसन देखा जाता है। ये पहले कविता भी करते थे। इनकी संख्या राजस्थान में कम ही देखने में आती है। फलौदी में फत्तूजी राणा अच्छे लोक कलाकार हैं। राणाओं का राजपूतों के विवाह में नेग बंधा हुआ है। तोरण, घोड़ा, छवरी (चंवरी) के नेग बंधे हुए हैं। श्री शोभाराम (थाणेराव) गोड़वाड़ निवासी माँड शैली के बहुत अच्छे गायक हैं।

४—लंगे

ये जैसलमेर में अधिक पाये जाते हैं। ये मुसलमान हैं। कहा जाता है कि ये भी हिन्दुओं से ही मुसलमान हुए। ये कमच्या बजाते हैं जो सारंगी से मिलता जुलता वाद्य है। लंगे राजस्थान के लोक-गीतों की मूल परम्परायें निभाये हुए हैं। ये खेती भी करते हैं। इनको शास्त्रीय संगीत की भी जानकारी रहती है। ये चौहानों के यहां ही गाने जाने बतलाये जाते हैं अन्यों के नहीं। इनमें दो वर्ग पाये जाते हैं। इन्होंने माँड गायकी की अच्छी परम्परा सुरक्षित कर रक्खी है। माँड को ये ८-९ प्रकार से गाते हैं। वहाँ के महाराजा ने कुछ लंगों को आश्रय दे रक्खा है। सुवालिया, मोहनगढ़, जांय गांवों में लंगा मुसलमान रहते हैं। इनके सिंधियों की विरत (वृत्ति) है। इनके गुल्लुजी, करवल आदि उस्ताद हैं। फलौदी से तीन मील पाणियों की ढाणी में रमजू लंगा सुरनाई (शहनाई) अच्छी बजाता है। फलौदी के पास के बापू तथा टेकरो गांवों में लंगे सुन्दर शहनाई बजाते हैं।

५—पातुर

ये छोटी ढोलकी बजाती हैं। इनका नाचने और गाने का पेशा है। इनके पुरुष जागरी कहलाते हैं। ये भी नाचने-गाने का काम करते हैं। पातुर पाजामा और अंगरखा पहनती हैं। ऊपर से दुपट्टी अथवा ओढनी ओढती हैं। ये वैश्या वृत्ति को भी अपनाये रहती हैं। इनके घरों के ऊपर फूस अथवा खपरेल मिलेंगें। ये राजपूत बतलाई जाती हैं किन्तु आर्थिक संकट के कारण इनको यह पेशा अपनाना पड़ा है।

६—भगतण

वैश्याओं की यह एक जाति है जो नाचने-गाने का काम करती है। ये मुसलमानों के साथ भी रहती हैं। कहा जाता है कि रामावत साधुओं की लड़कियाँ भ्रष्ट हो गई थीं। साधुओं के समाज में उनका पाणिग्रहण संस्कार नहीं हुआ। इन्हीं साधु कन्याओं से यह जाति बनी। इस जाति के पुरुषों को भगत कहते हैं। इनके घरों की लड़कियाँ ही वैश्यावृत्ति अपनाती हैं। इनके घर पर जो बाहर से स्त्रियाँ आती हैं वे नहीं अपनातीं। इनमें नाते की प्रथा नहीं है। ये जोधपुर की ओर अधिक मिलती हैं।

७—कलावंत

संस्कृत के शब्द कलावंत का यह रूप है। ये गवैये और बजैये होते हैं। मारवाड़ के कलावंत सुन्नी मुसलमान हैं। कहा जाता है कि इनमें से कुछ गौड़ ब्राह्मण और कुछ टांक चौहान राजपूत थे किन्तु इनको बाद में मुसलमान बना लिया गया। इनकी स्त्रियां नाता नहीं करतीं। मारवाड़ में महाराजा मानसिंह के जमाने में इनकी उन्नति हुई थी। ये मिरासी मुसलमान हैं। सिरोही में राणे भी कलावंत कहलाते हैं।

८—राव

राजस्थान के गांवों की जातियों की पीढियों को ये सुरक्षित रखते हैं। ये गाने में कुशल होते हैं, मौलिक कविता करते हैं और उसकी धुन भी निकालते हैं। राजपूत लोग इनका बहुत आदर करते हैं। इनके जागीरें भी हैं। पर्दा भी रहता है। राजपूतों से मिलता हुआ इनका जीवन

है। मेवाड़ में ये काफी संख्या में हैं। जेवाणे, नाथद्वारा के पास लाल-मादड़ी, वन्योरा, कुरावड़ आदि में इनकी बस्तियां अधिक हैं। इनके राजपूत जजमान हैं। पुत्र-जन्मोत्सव, विवाह आदि के अवसर पर इनको नेग मिलता है। रावों के गोत्र देमुन्दी, राणीमंगे, जालोरा आदि हैं। राजपूतों की खांपों से इनके गोत्र मिलते हैं, जैसे गहलोत, चौहान, पंवार आदि। ये हिंगलाज देवी को पूजते हैं। हरलालजी भाभा कोटा-रिया के बड़े अच्छे कवि हैं। कुरज के श्री लक्ष्मीनारायण राव लोक गायक एवं नर्तक हैं। राव डिंगल के विद्वान होते हैं और इनमें कविता करने की इनकी परम्परागत एवं प्राकृतिक शक्ति होती है। राजपूतों के राव डिंगल कविता और प्राचीन इतिहास के अच्छे जानकार होते हैं। शेष राव गाने का काम भी करते हैं।

९—भाट

सामाजिक स्तर की दृष्टि से भाट बढ़कर हैं। इनका पेशा रावों से मिलता-जुलता है। वही भाट हजारों वर्षों की अपने जजमानों की पीढ़ियों को अपनी बहियों में सुरक्षित रखते हैं। ये प्रतिवर्ष अपने जजमानों के पास जाते हैं। इनका नेग बंधा हुआ है। ये वंश वृक्ष रखते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी ठीक रहती है। कहीं-कहीं ये लोग गाने का भी काम करते हैं। ये लोग उत्तर पश्चिम प्रान्त तथा गुजरात में अधिक हैं। इनकी रीतियां ब्राह्मणों से मिलती जुलती हैं। इनमें अच्छे विद्वान भी मिलते हैं। यह बहुत प्राचीन जाति है। बाटी भाटों की रीतियां राजपूतों से मिलती हैं। इन्हें माफी में गांव और जमीनें मिली हुई हैं। विवाह के अवसर पर इन्हें इनाम मिलते हैं। इनके यजमान इनका बड़ा सम्मान करते हैं। राणी मंगा भाट केवल रानियों की ही वंशावली रक्खा करते हैं। भाटों की ही एक जाति और है जो भाट चारण कहलाती है। इनके वैवाहिक सम्बन्ध न तो चारणों से होते हैं और न भाटों से। ये अपनी ही जाति में विवाह करते हैं। इनके वंशज रोहडिया चारण हैं। मारवाड़ में भाट रासधारी नाचते हैं। कुछ कटपुतली भी नचाते हैं।

१०—ढाढी

ये लोग भी अपने जजमानों की विरुदावली सुनाते हैं। विवाह के अवसर पर अपने जजमानों के यहां उपस्थित होते हैं। ये वंशावली

कंठस्थ याद रखते हैं। इनका स्तर नीचा देखा गया है। आर्थिक दृष्टि से भी ये हीन हैं। 'ढोलामारू' प्रसिद्ध लोक काव्य के रचयिता भी ये ही बतलाये जाते हैं। उसके गाने में ये बड़े परिपक्व हैं। ये लोग हिन्दू भी होते हैं और मुसलमान भी। ये चिकारा नामक वाद्य बजाते हैं। हिन्दू ढाढी विश्नोइयों, जाटों और सुनारों से तथा खत्रियों से भिक्षा मांगते हैं। ये गायक हैं। मारवाड़ के थली रेगिस्तान में ये अधिक संख्या में बसे हुए हैं। वहां इन्हें मांगणियार कहते हैं। ये लोग राजपूतों और सिंधी मुसलमानों की वंशावलियां रखते हैं। ये राजपूती प्रथाओं को भली प्रकार निभाते हैं और अपनी ही जाति में विवाह करते हैं। नाता इनमें प्रचलित नहीं है। इनकी स्त्रियां गाती हैं किन्तु नाचती नहीं।

११—भोपा

भोपों के कई भेद हैं। माताजी, गोगाजी, भैंरूजी, पाबूजी, देवजी, हड़भूजी, डूंगजी-झुंवारजी, वलजी-भूरजी आदि के भोपे अलग-अलग हैं। 'पाबूजी के भोपे' रावणहत्थे पर पाबूजी की विरुदावली गा कर सुनाते हैं। इनका वाद्य बड़ा सुरीला बजता है। शेखावाटी, बीकानेर एवं जोधपुर के कुछ हिस्सों में डूंगजी-झुंवारजी एवं वलजी-भूरजी धाड़ियों की विरुदावली कुछ भोपे रावणहत्थे पर गाकर सुनाते हैं। वह रावण हत्था कुछ छोटा होता है और इतना सुरीला नहीं बजता। इन लोगों में आस्था की भावना अधिक देखी जाती है। ये भोपे अपने २ इष्ट देवों के गीत गा कर सुनाते हैं। ये एक स्थान से दूसरे स्थान अपने प्रदर्शन दिखाते फिरते हैं। इनकी स्त्रियां भी बहुत ऊंची आवाज से गाती हैं। आजकल ये सिनेमा की धुन के गीत भी गाने लगे हैं। जमाने की मांग ने इनसे ऐसा करवाया है। ये अन्य राजस्थानी लोक गीत भी गाकर सुनाते हैं। जैसे सुवटिया, मूमळ, बीछूड़ो आदि। इनकी आर्थिक स्थिति बड़ी नाजुक है। ये फटे हुए वस्त्रों में ही घूमते फिरते हैं। भोपी प्रायः मधुर गाने वाली होती है और रेगिस्तानी खुले मैदानों में अर्धरात्रि के समय इसका स्वर भी जमता है। श्रोतागण मुग्ध हो जाते हैं और झूम उठते हैं। गोगाजी के भोपे सांप का जहर उतारते हैं। माताजी के भोपे दूल्हे का सा वेश धारण किये रहते हैं। ये अपने पास त्रिशूल, डैरूं और थाली रखते हैं। विशेषतया ये जीण माता (सीकर) और करणीमाता (बीकानेर) के मेलों में इकट्ठे होते हैं। ये मुंह में से

गोले निकालते हैं और आंखों की पलकों में से सूई पार कर निकालते हैं। पाबूजी के भोपे थंदल गांव में हैं, जो चूरू से तीन कोस दूर है। श्री पूसाराम अच्छा भोपा है जो सुंदरता से पाबूजी की फड़ सुनाता है। पाबूजी के भोपों के गांव—डेगा, राणासर, खुडेरा, हरासर, रतनपुरा, रामपुरिया आदि हैं। डेगा निवासी सर्व श्री मालो, और हरासर निवासी पन्नो, कुरड़ो, चुन्नो हैं। फलौदी (मारवाड़) से चार कोस आगे मूला भोपा है। रामदेवजी के भोपे (कामड़) मारवाड़ की ओर हैं। ये तन्दूरा बजाते हैं। शेखावाटी की ओर चमार रामदेवजी के पुजारी हैं। कहावत प्रचलित है कि 'रामदेवजी ने मिल्या जिका ढेढ ही ढेढ'। भैरूंजी के भोपे माथे में सिंदूर लगाते हैं, कपड़ों में तेल डालते हैं। ये त्रिशूल धारण करते हैं। कमर में बड़े बड़े घूंघरू बांधे रखते हैं। ये मशक का बाजा बजाते हैं। यह अकेला ही गाता है, इसके कोई जजमान नहीं होता। गोगाजी के भोपे—नायक, चमार आदि हरिजन जातियों में हैं। चूरू के पास जीवनराम का बेटा बेगाराम तथा मंसादेवी का पंडा श्री तोलानाथ गोगाजी के भोपे हैं।

टिप्पणियां

हरभूजी—ये सांखला राजपूत थे और राव जोधाजी के समकालीन थे। जोधाजी इन्हें बड़ा महात्मा मानते थे। जोधाजी के सामने इन्होंने पहले से ही भविष्य वाणी कर दी थी कि तुम्हारा राज्य बीकानेर तक फैलेगा। अतिथि-सत्कार में तो ये अनुपम थे।

रामदेवजी—मारवाड़ के एक सत्यवादी वीर हो चुके हैं। मुसलमान भी इन्हें पूजने लगे और ये रामशाह पीर कहे जाने लगे। सं० १५१५ में इन्होंने मारवाड़ के रुणेचा गांव में जीवित समाधि ले ली इनके उपलक्ष में राजस्थान के कई स्थानों में भादवा के महीने में मेले भरते हैं।

गोगाजी—ये चौहान राजपूत थे और गायों की रक्षा में वि० सं० १३५३ में बड़ी वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आये। ये शहीद होने के कारण जनता के द्वारा पूजे जाने लगे। सांप का काटा हुआ व्यक्ति इनके स्थान पर ले जाया जाता है। बीकानेर के गंगानगर जिले में नोहर भादरा के पास गोगामेड़ी में गोगाजी का विशाल मेला भरता है। यह मेला कृष्ण-जन्माष्टमी के दूसरे दिन गोगानवमी को भरता है। शेखावाटी में गोगानवमी से ही लोहार्गल के लिये यात्रा शुरू हो जाती है।

वलजी भूरजी—ये भी धाड़ी थे जो धनवानों को लूटते और गरीबों की मदद करते थे। ये अन्त में पुलिस का सामना करते हुए विसाउ के पास काम आये।

(पाबूजी, डूँगजी झुँवारजी के विषय में राजस्थानी गीत शैलियों वाले प्रसंग में वर्णन किया जा चुका है)।

माताजी—काली के रूप में भी ये पूजी जाती हैं। शक्ति की देवी हैं। आदि देवी और आदि शक्ति हैं। इनके कई नाम और रूप हैं। पौराणिक युग में इनका महत्त्व व विस्तार अधिक हुआ।

भैंरूजी के जहां जहां देवरे या मन्दिर आदि स्थान बने हुए हैं वहीं देवजी की पूजा—धूप, ध्यावना होती रहती है। गूजरों में सर्वत्र ही देवजी की मानता देखी जाती है।

देवनारायण—इन्होंने राजपूतों की बगड़ावत शाखा में जन्म लिया था। इन्होंने अपने पिता रावतभोज का बदला लिया था। पड़िहार राजपूतों से इनका युद्ध हुआ था। कहते हैं इनका जन्म चांडलिया गांव में हुआ था जो मारवाड़ और मेवाड़ की सीमा से लगता हुआ है। इनका जन्म सं० १३०० के लगभग माना जाता है। इनको गूजर पूजते हैं।

भैंरू—ये शिव और देवी के गणों में माने जाते हैं और पौराणिक देवताओं में हैं। लोक जीवन में भैंरों की बहुत मानता है। इन पर बहुत से गीत मिलते हैं। मेवाड़ में काला-गोरा के रूप में इन्हीं की पूजा होती है।

१२—काळबेलिया

यह एक घुमक्कड़ जाति है। ये पूंगी और खंजरी बजाते हैं और गाते भी हैं। विशेषतया ये गांवों में अपना मनोरंजन प्रदर्शित करते हैं। इनकी स्त्रियां भी गाती हैं। इनकी पोशाकें बड़ी कलात्मक होती हैं। ये भगवां वस्त्र पहने रहते हैं, सिर पर साफा बांधते हैं और अपने को नाथ पंथी बतलाते हैं। सांप दिखाना इनका प्रमुख व्यवसाय है। ये जड़ी-बूंटियां भी रखते हैं। सर्प और बिच्छू के डंक और दर्द को दूर करने वाली बूंटी भी लोगों को देते हैं। कई जगह ये बाज खेलते भी देखे गये हैं। ये डेरों में रहते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी साधारण रहती है। ये अपनी पूंगी में निम्न गीतों की धुनों का अधिक प्रयोग करते हैं।

ये धुनें सचमुच बड़ी मोहक होती हैं। इनकी बस्तियां सरदारगढ़ के पास आगरिया और कुंवारिया के पास मिलती हैं।

पूंगी पर ये धुनें बजाई जाती हैं—

(१) ईंडोणी :—'पाड़ोसण बड़ी चकोर गम गई ईंडोणी',

(२) पणिहारी :—'कुण रे खुदाया कुवा बावड़ी ए पणिहारी ए लो',

(३) लूर :—'सागर पाणीड़े नैं जाऊँ नजर लग जाय'।

इसी प्रकार के अन्य लहरे ये बजाते हैं। कालबेलियों के कुछ गीत निम्न प्रकार से हैं—

(१) शंकरया :—अरे शंकरया रे धमक चाल मत चाल
मालवो दूरो रे भायला मालवो दूरो रे.......

(२) हालूड़ो हींदे रे दरजी रो दिन मोड़ो हींदे रे
म्हारो छैल भंवररो जोड़ियो सितार हींदे रे
जागो मेळा में।

(३) खणवा वाळो आयो डाबी में सुइयां लायो रे
थने कठे छिपाऊं म्हारी आलीजा
खणवा वाळो आयो।

(४) गांव थारो नींबलियो झगड़ो जो लागो ए
लकूड़ी झगड़ो लागो।

१३—अड़ भोपा

सामुद्रिक शास्त्र इनका व्यवसाय होता है। ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित इनके गीत बहुत अधिक आकर्षक होते हैं। आजकल इनकी आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय है। इनको भिन्न-भिन्न धुनें याद हैं। कांकरोली-नाथद्वारा के पास इनकी बस्तियां हैं।

१४—कानगूजरी

विशेष रूप से राधा और कृष्ण के जीवन पर भक्ति सम्बन्धी गीत गाने में ये बड़े पटु हैं। जब ये नृत्य करते हैं तब साथ ही गाते हैं। अधिकतर ये मारवाड़ की ओर पाये जाते हैं। ये रावणहत्था भी बजाते हैं। यह जाति से गूजर होते हैं और पूछने पर अपने को राधाकृष्ण का

अवतार कहते हैं। ये राधाकृष्ण के मोहक गीत गाते हैं और संतोषी जीवन विताते हैं।

१५—वैरागी

जाति से ये साधु हैं और इन्होंने अपनी आजीविका के लिये मुख्य व्यवसाय गाना ही बना रक्खा है। राजस्थान में रासधारी शैली में जो लोक नृत्य-नाट्य प्रचलित हैं, उनमें ये बड़े कुशल होते हैं। ये सुगणी भजन भी गाते हैं।

१६—कामड़

इनका मुख्य काम अपने संरक्षकों के लिये धार्मिक अवसरों पर गाना है। उनकी औरतें गाने में और तेरह ताली बजाने में बड़ी निपुण होती हैं। तेरह ताली मजीरे बजाने का एक मोहक, कठिन और कलात्मक ढंग होता है। ये मेघवालों और भाम्बियों के मसखरे होते हैं। ये लोग तन्दूरे अथवा चिकारे पर गीत गाते हैं। यह भाम्बियों की ही शाखा बतलाई जाती है। भाम्बियों के साथ ये लोग खा-पी तो सकते हैं किन्तु वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करते। भाम्बियों के लिए इनकी स्त्रियां नाचती भी हैं और गाती भी हैं। डीडवाना और पोकरण के कामड़ ऊंचे कलाकार हैं। इनकी उपजाति गोरवी और धानक हैं। इनके जमीनें भी हैं जो जागीरदारों द्वारा दी गई हैं। डीडवाना और कलवाड़ा के कामड़ रूणीचा के रामदेवजी के गीत गाने में जाने पहचाने हैं और उधर के इलाके में प्रख्यात हैं।

१७—सरगड़ा

ये भी ढोलियों के सदृश हैं और उनकी सी विशेषताएं अपनाये हुए हैं। कच्छीघोड़ी नृत्य में ये सुन्दर काम करते हैं। यह जाति चमारों के ही समान मानी जाती है। पूर्वकाल में ये लोग तीर बनाया करते थे। सर (तीर) से इनका नाम सरगड़ा पड़ा। इन्हें सरगाराह भी कहते हैं। ये ढोल बजाकर डूंडी भी पीटते हैं। ये हिन्दू रीतियों का विवाह के अवसर पर अनुसरण करते हैं। ये समाचार पहुँचाने का भी काम करते हैं।

१८—कंजर

कंजर सांसियों की तरह जरायमपेशा जाति में शुमार थे मगर अब सरकार ने इन्हें भी अलग अलग जगह बसा लिया है। कंजरियां नृत्य में

बहुत प्रवीण होती हैं और घर-घर जाकर नृत्य से पैसा भी कमाती हैं। कंजरियों की पोशाकें अत्यन्त कलात्मक होती हैं। वे अपने अंग को नाना प्रकार के गोदनों से गुदाकर सुन्दर बनाती हैं। कंजर पुरुष भी नाचते हैं परन्तु वे इतने प्रवीण नहीं होते जितनी कंजरियां। कभी-कभी स्त्री-पुरुष मिल कर भी नाचते हैं। आमतौर से ये ढोलक और मजीरा बजाते हैं और कंजरियां नाचती हैं। इनके शरीर का मोड़-तोड़ देखते ही बनता है। रोजी के लिए गीत और नृत्य इनका मुख्य धंधा है। राजस्थान के प्रेम और शृंगार के गीत गाने में ये बड़े परिपक्व हैं। ये अजमेर की ओर अधिक मिलते हैं। कंजर जाति से हिन्दू हैं। कंजरों के कुछ प्रसिद्ध गीत ये हैं—

(१) ढोला ढोल मजीरा बाजे रे,
काळी छींट को घाघरो नजारा मारे रे।

(२) गोर बंद और काजळियो (इनका विवरण आगे है)।

(३) चांदी को ढोल्यो रे, जीवो मोरे राजा......।

१९—सांसी

यह कौम पहले अपराधी जातियों में थी। कुछ लोग इनकी उत्पत्ति भरतपुर से मानते हैं। इनकी स्त्रियां नाचती-गाती हैं। धीरे-धीरे इनमें सुधार होता जा रहा है। ये हिन्दू हैं और माता की उपासना करते हैं। ये मांसाहारी हैं और शराब भी बहुत पीते हैं। इनमें स्वाभिमान बिल्कुल नहीं मिलता। ये लोग भंगियों का सम्मान करते हैं। ये पशुओं को बेचने का भी व्यवसाय करते हैं। धीरे-धीरे इनको बसाया भी जा रहा है। पिछड़ी जाति कल्याण विभाग ने इनके बच्चों के लिये कई स्थानों पर छात्रावास खोले हैं। इनका अपना कोई व्यवस्थित एवं नियमित जीवन नहीं है, परन्तु नाच गान में ये बहुत प्रवीण हैं। स्त्री पुरुष मिल कर नाचते हैं। होली के अवसर पर ये विशेष रूप से नाचते हैं। नाच गान इनके जीवन के अंग हैं। किसी समय इनकी स्त्रियों ने नृत्य को व्यवसाय के रूप में भी अपना लिया था।

२०—जोगी

बीकानेर, जोधपुर और शेखावाटी की ओर ये लोग गाने-बजाने का काम करते हैं। ये नाथ पंथी हैं और गोपीचंद, भरथरी, और शिवजी

का ब्यावला आदि प्रबन्ध-गीतों को चतुर्मास में गा कर सुनाते हैं। ये सारंगी पर गाते हैं। इनमें से कुछ 'सुलतान निहालदे' के पवाड़े भी गाकर सुनाते हैं। जोगी मुसलमान भी होते हैं जो टोंक में पाये जाते हैं। अधिकतर ये लोग गाँवों में रहते हैं। ये कसबों में भी घूमते रहते हैं। घर-घर जा कर भरथरी, गोपीचंद आदि के कुछ बोल गा कर सुना देते हैं और गृहस्थी इन्हें अनाज या आटा डाल देते हैं। कुछ जोगी शिव के बड़े भक्त होते हैं। ये गुरु गोरखनाथ के सम्प्रदाय को मानते हैं। ये निर्गुणी भजन, सबद आदि भी गाते हैं। योगी शब्द से ही जोगी बना है। गोरखपंथी भजनों में हठयोग का वर्णन मिलता है। इनके दो भेद हैं। (१) कनफटे और (२) आयसजी। कनफटों का सम्मान अधिक होता है। ये कई स्थानों के महंत हैं और आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न हैं। इनके स्थान भी बहुत से कस्बों और गांवों में बने हुए हैं। कनफटे कानों में गोल मुंदरा पहनते हैं। इनमें विवाह वर्जित है। इनमें ही काळबेलिया जोगी भी होते हैं।

२१—नट

प्राचीन युग में नाट्य-कार्य नट अथवा नाट्य-विशेषज्ञों द्वारा होता था परन्तु जैसे-जैसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेषता आती गई वैसे-वैसे व्यवसाय के अनुसार जातियों का आविर्भाव हुआ और अभिनेताओं की भी नट नामक जाति विशेष बन गई। आज भी तीन प्रकार के नट हमारे प्रान्त में विद्यमान हैं, एक वे जो रस्सी पर चलते तथा शारीरिक व्यायाम के चमत्कार दिखलाते हैं। दूसरे वे जो कठपुतली नचाने का काम करते हैं। तीसरे वे जो कि अभिनय से जनता को रिझाते हैं। यद्यपि ये तीनों ही प्रकार के नट एक ही परम्परा से सम्बन्धित हैं परन्तु आज इनमें विचारों और परम्पराओं का भेद हो गया है।

राजनट

शारीरिक व्यायाम-कौशल दिखलाने में ये अद्वितीय होते हैं। ये कई प्रकार की क्रीड़ाएं दिखाते हैं। कलाबाजियों में ये बड़े कुशल होते हैं बड़े-बड़े बांसों पर चढ़ कर ये अपना करतब दिखाते हैं। उस समय वे गाते भी हैं। गाने बजाने से प्रदर्शनकर्ताओं को बड़ी प्रसन्नता मिलती है और उनको जोश आता है। ये बड़ी ढोलक बजाते हैं। एक तरफ

इसे डंके से बजाते हैं और एक तरफ खाली हाथ से। राजा और राजपूत इनके जजमान होने से ये राजनट कहलाते हैं। निम्बाहेड़ा के पास सज्जनखां का डेरा राजनटों का मुख्य स्थान है। ये स्थान-स्थान पर घूमते रहते हैं। कौतुक करने वाले अब राजस्थान में बहुत कम नट रहे हैं। ये पजामा तथा कसी हुई धोतियां पहनते हैं। गले में कोड़ियों अथवा मूंगे की माला धारण करते हैं। इनकी स्त्रियां पीतल के गहने पहनती हैं। बाजीगर भी नटों में ही होते हैं। ये बाजीगर जादू का खेल, बन्दर, भालू के तमाशे दिखाते हैं। डमरू और बंशी बजाते हैं। दक्खिनी नट भी होते हैं, इनको गंदिया नट भी कहते हैं। ये अत्यन्त निर्धन हैं। कनाडची, पारची, कलचेदिया, बनचड़, बगरिया, बनलेट, मोगिया और बोदीना राजस्थान और मध्यभारत की सीमा पर नटों की बस्तियों के गांव हैं।

कठपुतली नट

यह जाति पिछड़ी हुई जाति में शुमार की जाती है। कुचामण तथा परबतसर के आस पास के गांवों में ये स्थायी घर बना कर बस गये हैं। यह सदा से घुमन्तू जाति रही है और आज भी ये जगह-जगह जा कर प्रदर्शन करते हैं। ये आठ महीने यात्रा करते हैं और बरसात में चार महीने घर पर रहते हैं। इनके जजमान भांभी अथवा जुलाहे हैं। भांभियों के यहां ये शादियों के अवसर पर ढोल, तुरही आदि वाद्य भी बजाते हैं। कोई-कोई नट तो भांभियों के पूर्वजों का लेखा-जोखा भी रखते हैं। किसी की शादी में बुलाये जाने पर ये भोजन के अलावा ५०) रुपये तक प्राप्त करते हैं। प्रत्येक खेल के ५) तक लेते हैं। इनकी स्त्रियां बड़ी साहसी होती हैं। कठपुतलियों के साथ नकली चेहरा लगा कर ये अभिनय भी करती हैं। कठपुतली वाले खर्चीले पाये जाते हैं। विवाह-शादी में ये २०००), ३०००) रुपये तक खर्च कर देते हैं। इनके डेरों में सहयोग की भावना भी मिलती है। कठपुतलियां नचाने वाला नट बड़ा कला-मर्मज्ञ होता है। उसे ताल-सुर का भी ज्ञान होता है। यह नृत्य-कला में भी बड़ा निपुण होता है। गीतों के साथ चलने वाली ढोलक की गति तथा पुतलियों के साथ प्रयुक्त होने वाले हास्य-विनोद से प्रकट होता है कि नटों की यह विशेष जाति बहुत कला-निपुण होती है।

कठपुतली नट गीतों को भी सुन्दरता से गाते हैं। गायक कलाकार के गुण इनमें विद्यमान हैं। गीतों का एक नमूना दिया जा रहा है—

मारू थारा देस में, निपजे तीन रतन्न।
एक ढोला दूजी मारवण, तीजो कसूमल रंग॥
दारू देतो मांस दे, गोरख देतो घास।
तिरिया देतो मन हंस खेलणी,
पांच भाइयां रो साथ.......।

मारवाड़ में वेगसर, रसाल, बावली, डावडा, वासा, निमोद, लुणीचा, खाखोली आदि गांवों में कठपुतली वाले नटों के डेरे विद्यमान हैं। केन्द्रीय संगीत नाटक एकेडेमी कुचामण निवासी श्री चमनलाल के दल को संरक्षण दे रही है।

२२–भवाई

नाचने–गाने वालों की यह एक जाति है। इसकी उत्पत्ति केकड़ी स्थान से नागाजी जाट द्वारा मानी जाती है। समय पा कर अन्य जातियों से भी भवाई बन गये और भवाइयों की एक स्वतन्त्र अच्छी संख्या वाली जाति बन गई। राजस्थान और मालवा में निम्नलिखित जातियों के भवाई हैं—जाट, धाकड़, बोळा, डांगी, मीणा, भील, कुम्हावत, नायक, तेली, चमार, बळाई, गूजर लोदा और माळी। भवाइयों के यहां नौकरी करने वाली जाति के लोग भी भवाइयों में ले लिये जाते हैं। यह एक स्वावलम्बी जाति है और अपना आत्मसम्मान रखती है। ये अपने जजमान के यहां ही नाचते हैं। प्रति घर से वे १) रुपया ही लेते हैं और खाने का खर्च भी जजमान को ही देना होता है। ये स्वभाव से सरल, रंगरूप से मोहक और रहन-सहन से वड़े शौकीन होते हैं। ये भी लग-भग ८ महीने यात्रा करते हैं। यदि इनका कोई जजमान इन्हें इनकार कर दे तो फिर उसकी ये वड़ी मजाक उड़ाते हैं। ये जजमानों का लेखा-जोखा भी अपनी वहियों में लिखते हैं। ये कई प्रकार के नाच करते हैं और संगीत-नाट्य भी। नृत्यों के चमत्कारिक प्रदर्शन और परिश्रमपूर्ण नृत्यों में यह जाति राजस्थान में अकेली ही है। इनके नृत्य गीत के विना नहीं होते। आजकल इनके साथ ढोल और मजीरा वजता है किन्तु पहले सारंगी, नफीरी, नक्काड़े आदि वजते थे। सारंगी की जगह आजकल हारमोनियम वजता है। इनके गीत हास्यप्रधान रहते हैं। गीतों के स्वरों में विविधता है और वे काफी परिमार्जित भी हैं—

ढोलामारू का गीत

या प्रेम पत्रिका दीजो
म्हारा नाहजी ने जाई दीजो
आंसू पड़ पड़ अंगिया टपके····

धींकाजी खेल का गीत

बाजण लागा बायरा, झड़ण लागी खेह।
चालण लागो सायबो, मारो टूटण लागो नेह॥

बावजी के गीत

बाबा आव घर छोटड़े, थके थूं घणी।
जासी फूल म्हाई, थारी बास न जावे बावजी॥

ये गीत भाटों और चारणों की परम्परा पर बनाये हुए हैं।

भवाई अपने पारिवारिक जीवन में सुखी होते हैं। ये अपनी स्त्रियों की इज्जत करते हैं। ये लोग अपने घरों को बड़ा साफ सुथरा रखते हैं। भवाइयों के साधारण डेरे की आय लगभग ३०००) रुपये प्रति वर्ष तक हो जाती है।

भवाई कलाकार राजस्थान में भिन्न-भिन्न कलाओं की दृष्टि से निम्न प्रकार से प्रसिद्ध हैं—

(१) 'शंकरिया' के नाच में श्री ओगालाल खोड़ीप; नीम्बाड़ा, चित्तौड़ के पास के विख्यात हैं।

(२) कमरती नाच के लिये श्री वंशी और लक्ष्मण बड़े नामी हैं। ये खेड़ी के रहनेवाले हैं जो नीम्बाड़ा के पास है।

(३) गाने की-कला में श्री प्रेमचंद बड़े प्रवीण हैं जो जिलावर के निवासी हैं। यह गांव बाघुंडा स्टेशन के पास है।

भवाइयों की बस्तियां कानखा, बाम्बोड़ा, छल्ला, गड़ली, मन्मोरी, कलोज, मरलिड़ा, नावला, खेड़ों, माओ, कन्यारो, ऊँखर्यो, आरड़ी, चितौड़ी; बड़ोद्यो, भील्यो, रोड़ारो आदि गांवों में हैं।

२३—मिरासी

ये जाति से मुसलमान होते हैं। अधिकतर ये अलवर, जैसलमेर, मारवाड़ और जयपुर में हैं। ये वंशावली भी सुनाते हैं। यह कौन गाने

बजाने वाली है। ये खुद भी गाते हैं और अपनी स्त्रियों को भी गाना और नाचना सिखाते हैं। कहा जाता है कि बहुत से हिन्दू ही अपना धर्म बदल कर और मुसलमान धर्म स्वीकार कर मिरासी जाति में शामिल हो गये। मिरासियों की स्त्रियां गायक होती हैं; ये पजामा और अचकन पहनती हैं। मिरास शब्द अरबी का बतलाया जाता है। अलवर की ओर मिरासी मेवाती कहलाते हैं। इनके बनिये, ब्राह्मण, मेवाती, राजपूत, डांगी, पठान, सैयद, मुगल, खान आदि अधिकतर जजमान हैं। मिरासियों का इनके यहां नेग बन्धा हुआ है। इनको प्रति शादी पर ६०), ७०) के लगभग प्राप्त हो जाता है। ईद, बकराईद आदि त्योहारों पर भी इनको अर्थ-प्राप्ति होती है। ये कविता भी करते हैं। कुछ लोग इनका विकास अरब से मानते हैं। इनको राजा, रईसों तथा नवाबों की तरफ से जागीरें भी मिली हुई हैं। मेवातियों में ५२ गोत माने जाते हैं। इनके गोत्र भेट, कालेट, धामलिया, दिसाउ आदि हैं। बीकानेर में बीदासर के पास कुछ मिरासी रहते हैं। इनको बीदासर के ठाकुर ने जागीरें दी थीं अतएव वहां ये बस गये। उधर जमाल, दीपा, रूपा आदि मिरासी तबले बजाने की कला में होशियार हैं। जैसलमेर की ओर मिरासियों के बहुत घर थे। किन्तु अब उनमें से अधिकांश पाकिस्तान चले गये। कला-मण्डल के खोज विभाग ने उस इलाके का पर्यवेक्षण किया है और बहुत से कलाकारों के विवरण प्राप्त किये हैं। जैसलमेर के इन गांवों में इनकी अच्छी बस्तियां हैं। इनमें कुछ अच्छे कलाकार भी हैं। वे गांव हैं रूपसी, रामा, पडोण, आदासर, मोकल, हरबूट, शानू, हमीरा, लागेला, पाखेर, जेलासर, उबडी, सत्तो, सांकरा आदि। जैसलमेर के मिरासियों ने मांड गायकी की परम्परा को सफलता से निभाया है।

२४–ढोली

ढोल बजाने के कारण ये ढोली कहलाये। ये नक्कारची भी कहलाते हैं। कहीं इन्हें दमामी और जावड भी कहते हैं। ढोली अपनी उत्पत्ति गंधर्वों से मानते हैं। इनमें राजपूत वंश भी बाद में मिल गये। ये लोग बहुत कुछ राजपूतों की ही रीतियां निभाते हैं। ढोलनें भी बहुत अच्छा गाती हैं। मांड गायकी की परम्परा को इन्होंने कायम रक्खा है। इनमें नाता नहीं होता। औरंगजेब के जमाने में डांगी वंश के ढोली,

मुसलमान ढोली भी बताये गये। इनकी जमात सुन्नी है। ये हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के नियम निभाते हैं। ये सूअर का मांस नहीं खाते और झटके का मांस भी नहीं खाते हैं। इनकी स्त्रियां हिन्दुओं की स्त्रियों की तरह घाघरा पहनती हैं।

ढोली गाने-बजाने का काम करते हैं। उदयपुर, जयपुर, बीकानेर और प्रतापगढ़ में ये अधिक विख्यात हैं। पेशेवर लोक कलाकारों में ढोली शायद सबसे श्रेष्ठ हैं। इनकी स्त्रियां राजस्थान के सब प्रकार के गीतों को गाने में बड़ी प्रवीण हैं। जीविका के उपार्जन के लिये विशेष अवसरों पर गाना इन्होंने अपना मुख्य धन्धा बना रक्खा है। इनकी आवाज बड़ी सुरीली होती है और लोकगीतों के गाने की इनको प्राकृतिक देन है। पुरुष भी गाने में बड़े होशियार होते हैं। इनमें से कुछ शहनाई, ढोलक, तबला, सारंगी और नगाड़ा बजाने में पारंगत हैं। उदयपुर की ओर ज्यादातर ढोलनियां राजपूत, लवार, सुथार, सोनी, ब्राह्मण, वैश्य के यहां विवाह और बच्चा-बच्ची होने पर गाती हैं। राजपूतों की बरात में पुरुष गाते हैं। उसमें ये सारंगी अथवा हारमोनियन बजाते हैं। महाजनों, ब्राह्मणों के यहां हालर के गीत जब गाये जाते हैं तब ढोली नगाड़ा बजाते हैं। विवाह के समय पर खुशी के गीत और कामण भी गाते हैं। स्त्रियाँ परणेत के गीत गाती हैं। पावणा और जँवाई भी गाती हैं। इनके जजमान विशेषतया राजपूत होते हैं। होली, दीवाली, रक्षाबन्धन तथा अन्य त्यौहारों पर ढोल बजाने जाते हैं तब इन्हें अन्न और भोजन दिया जाता है। राजपूत लोग विवाह के अवसर पर घोड़ा, ऊँट, भैंसा, कूआ, खेत, रुपये आदि देते हैं। राजपूतों के यहां से ३०) रुपये से सौ रुपये तक की प्राप्ति हो जाती है। निछरावळ के रूप में बहुत सा थान भी मिल जाता है। ढोलनें नाचती भी हैं।

पिछले वर्षों में ढोलियों ने अच्छी तरक्की की है। इनमें से बहुत से संगीत और सिनेमा-संसार में अच्छे पदों पर पहुँच गये हैं। सुजानगढ़ का इलाका इस दिशा में सब से बढ़ा-चढ़ा है। इन पदों से इन्हें अच्छा सम्मान और द्रव्य भी प्राप्त हुआ है। फलौदी, पोकरण और राजलदेसर की ओर भी ढोलियों की बस्तियाँ हैं। उदयपुर में ढोलनें घूमर के गीत गाने में बहुत प्रवीण हैं। वहां रतनबाई अच्छा गाती हैं।

पोकरण की ओर सूरज और भँवरी अच्छा गाती हैं। वहां से ६ मील दूर रामदेवरा के श्री मूलचन्द आजकल बम्बई में फिल्मों में काम करते हैं। सुजानगढ़ की ओर स्थित कुड़ी गांव के श्री खेमचन्द्रप्रकाश ख्याल गायकी के अच्छे गायक थे और श्री वसंत प्रकाशजी संगीत निर्देशक (म्यूजिक डाइरेक्टर) हैं। श्री कन्हैयालालजी कत्थक मेरठ में संगीत शिक्षक हैं। श्री हजारीलाल जी तबलिया बड़ावर निवासी, मेरठ संगीत-समाज कालेज में तबलिये हैं। श्री कुंदनलालजी कत्थक बड़ावर निवासी, बड़ौदा म्यूजिक कालेज में संगीत के प्रोफेसर हैं। श्री लक्ष्मणप्रसाद नौरंगसर निवासी और श्री गणपतलाल डांगी भी बहुत अच्छे गायक हैं। इस प्रकार कुड़ी, टरडा, बड़ावर, गोपालपुरा, करवाड़ी, नौरंगसर आदि गांव श्रेष्ठ ढोली नर्तकों एवं गायक वादकों के स्थान हैं जहाँ ये अच्छी संख्या में बसे हुए हैं। उधर के ठाकुरों ने इन्हें जमीनें दी थीं अतएव ये उधर बस गये।

अध्याय ६

राजस्थान के लोक-वाद्य

वाद्य साढ़े तीन प्रकार के होते हैं। (१) तार वाद्य (२) फूँक वाद्य (३) खाल वाद्य और आधे में ताल वाद्य माने गये हैं।

जो वाद्य तार से बजते हैं वे तार वाद्य, जैसे अपंग, इकतारा, सारंगी, तन्दूरा आदि। जो फूँक से बजते हैं वे फूँक वाद्य, जैसे बाँसुरी, पूंगी, अलगोजा आदि। जो खाल के बने होते हैं वे खाल वाद्यों के क्षेत्र में आयेंगे। जैसे नक्कारा, ढोलक, ढोल, तासा आदि। आधे ताल के वाद्यों में समय, लय या स्वर नहीं होता, उनके द्वारा केवल झन-झन या टन-टन की आवाज होती है। नीचे इनका वर्णन वर्गानुसार किया जायगा। इस बड़ी सूची को देखने से पता चलता है कि लोकवाद्यों की आज भी संख्या कम नहीं है। शास्त्रीय संगीत के वाद्य इनसे भिन्न हैं और भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकवाद्य भी हैं। मूलतः वे समान हैं पर बाह्य रूप से वे भिन्न हैं। हिमाचल प्रदेश के लोकवाद्य और सौराष्ट्र के लोकवाद्य समान नहीं हैं। शास्त्रीय वाद्यों का विकास इन्हीं लोकवाद्यों से हुआ है इसमें दो मत नहीं हो सकते। सभी चीजों में समय पाकर विकास होता है। राजस्थान लोकवाद्यों की दृष्टि से कम सम्पन्न नहीं है। नीचे दी गई सूचि इस बात का प्रमाण होगी।

इन लोकवाद्यों का भविष्य क्या है ? यह कहा नहीं जा सकता। कुछ लोकवाद्य जैसे रवाज, जंतर आदि बहुत ही कम देखने में आते हैं। ये लगभग समाप्त से ही हो गये हैं।

फूँक वाद्य

अळगोजो—यह एक प्रारम्भिक वाद्य है, आनन्दाभिव्यक्ति के समय मुँह से सीटियां बजाने का विकसित रूप है। मुँह से सीटियां नहीं बजा कर धीरे-धीरे बाँसों में छेद करके उनसे आवाज निकालने की प्रथा चल पड़ी। यह आधुनिक सात सुर वाली आड़ी और खड़ी बाँसुरी से भिन्न है। अळगोजे के कई रूप आज भी विद्यमान हैं। कई अळगोजे तीन छेद वाले भी होते हैं और कई पाँच छेद वाले भी। आदिवासियों तथा ग्रामीणों में इस वाद्य का विशेष प्रचार है क्योंकि उनके गीतों की चलंत-फिरत तीन चार स्वरों में ही होती है, इसलिए अळगोजा उनके लिए उपयुक्त है।

किसी भी बाँस की नली में लोहे की गरम सिलाख से छेद कर दिये जाते हैं। बाँस की नली के ऊपर के मुँह को छीलकर एक लकड़ी का गट्टा चिपका देने पर आसानी से उसमें से आवाज निकाली जा सकती है। प्रायः दो अळगोजे एक साथ मुँह में रख कर बजाये जाते हैं। दोनों साथ बजने से बड़े मधुर मालूम होते हैं। यह खड़ा बजता है। एक से तो केवल सा बजता रहता है दूसरे से स्वर निकाले जाते हैं। किसी में चार-चार छेद भी होते हैं। इसको काळबेलिये भी बजाते हैं। यह नकसाँसी से बजता है।

शहनाई—यह बड़ी चिलम के आकार की होती है और सीसम या सागवान की बनती है। शहनाई सबसे अच्छी बनारस में बनती है। इसमें आठ छेद होते हैं। इसका पत्ता ताड़ के पत्ते का होता है। इसकी आवाज बड़ी तीखी और मीठी होती है। यह बहुत दूर तक सुनाई दे जाती है। इसको खासकर नगारची बजाते हैं। कभी कभी लोक-नाटक ख्यालों के साथ भी यह बजाई जाती है। इसका जोड़ा नगाड़े का है। शादी के अवसर पर भी यह बजाई जाती है। राजा महाराजाओं के यहाँ यह प्रति दिन बजा करती थी। इसकी धुन फूँक के ऊपर ही निर्भर है। यह पुराना वाद्य है।

पूँगी—यह छोटी लौकी, विया अथवा तुम्बे की बनी होती है। इसकी तुम्बी एक अलग ही प्रकार की होती है। उसका पतला भाग (मुँह) लगभग डेढ़ बालिश्त लम्बा होता है। तुम्बी के नीचे का हिस्सा गोल आकार का होता है। उसके नीचे के हिस्से में थोड़ा सा छेद कर दिया जाता है। फिर दो पतले बाँस की दोपोरी अर्थात् दो भूँगलियाँ ली जाती हैं। उन भूँगलियों में से एक के तीन छेद बना देते हैं और एक के नौ छेद कर देते हैं। फिर उन दोनों को एक दूसरे से मोम से चिपका देते हैं। नल बाँस लेकर दो पात बना लिये जाते हैं, वे दोनों पात उन भूँगलियों के मुँह में बैठा दिये जाते हैं। इनसे आवाज पैदा होती है। फिर उन दोनों जुड़ी हुई भूँगलियों को नल-बाँस सहित उस तुम्बी के छेद में मोम की सहायता से जमा दिया जाता है। यह भी नकसाँसी से बजती है। उसमें एक अचल स्वर 'सा' के रूप में बजता रहता है। इस वाद्य को ज्यादातर काळबेलिये बजाते हैं। इसमें साँप को मोहित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। नाग इसको सुनकर वश में हो जाता है।

बाँसुरी—इसको शास्त्रीय वादक भी बजाते हैं और लोक भी। ये अपने अपने ढंग से इसे बजाते हैं। शास्त्रीय बाँसुरी बनावट में खूबसूरत और कीमती होती है। यह बाँस की बनती है। इसमें सात स्वर होते हैं। यह आड़ी बजती है। यह सामुदायिक वाद्य भी है। भगवान कृष्ण और रास तथा कृष्ण और बाँसुरी अलग अलग नहीं किये जा सकते। वे इसके बड़े प्रेमी थे। यह कमखर्चीला वाद्य है। इसके स्वर मधुर होते हैं। यह संगत करने का वाद्य है। वैसे इसको स्वतन्त्र रूप से भी मनोरंजनार्थ बजाते हैं।

मशक वाद्य—यह रेगिस्तानी भागों में अधिकतर देखा जाता है। यह आधुनिक बीन (बैग पाइप) जो बैंड का साज है, उससे मिलता जुलता है। चमड़े की मशक में हवा भरी जाती है और मुँह से बजाने-वाला एक ओर उसमें हवा भरता रहता है और दूसरी ओर दोनों हाथों की उंगलियों की सहायता से स्वर निकालता रहता है। इसको भैंरूजी के भोंपे विशेषतया बजाते हैं। इसकी आवाज भी पूँगी की तरह होती है। यह भी नकसांसो की सहायता से बजता है।

बाँकिया—यह पीतल का बना होता है। ज्यादातर यह मेरठ में बनता है और ग्रांफोन की शकल का होता है। इसकी लम्बाई १॥ हाथ के लगभग होती है। इससे तूहड़ तूहड़ की आवाज होती है। शादी-विवाह के अवसर पर यह बजाया जाता है। यह सरगड़ों का खानदानी वाद्य है और ढोल के साथ बजता है। यह बैंड का साज सा जान पड़ता है।

शंख—यह एक जंतु का अंडा है जो समुद्र में पैदा होता है। इसकी आवाज बड़ी गम्भीर होती है और बहुत दूर-दूर तक सुनाई पड़ती है। इसको जमात वाले नाथ साधु बजाते हैं। मंदिरों में अक्सर प्रातः-काल और सायंकाल आरती के समय बजाया जाता है। भैरू और माताजी के मंदिरों में विशेषतः मेवाड़ में बजाया जाता है। इसके साथ झालर, घड़ियाल, गरुड़ घंटी, नौबत भी बजती है। आरती के बाद स्वतंत्र रूप में भी कहीं कहीं यह बजता है। यह शव के साथ भी बजाया जाता है। महाभारत में युद्ध शुरू होने से पूर्व इसके बजाने का उल्लेख मिलता है और यौद्धा अपने अपने शंख बजाते हैं और उनके अलग अलग नाम हैं। यह हृदय दहला देने वाला वाद्य है।

सिंगी—यह बलदार सींग का बना हुआ होता है। इसको प्रायः साधु, भगवान का स्मरण करने के बाद बजाया करते हैं।

भूँगळ—यह भवाइयों का वाद्य है। खेल शुरू करने से पहले गांव में भवाई इसे बजाते हैं तब जनता इकट्ठी हो जाती है। यह पीतल की बनी हुई होती है। लगभग तीन हाथ लम्बी होती है। यह चूड़िया उतार होती है। पुराने चित्रों को देखने से पता चलता है कि यह भी रण का वाद्य रहा है। इसकी आवाज कुछ कुछ वांकिये से मिलती है।

खाल वाद्य

मटकी—मटकी वादन में भी मटकियों के चुनाव में बहुत बुद्धिमानी की आवश्यकता है। जितनी ही अधिक पकी हुई और मजबूत मटकी होगी उतनी ही उससे मधुर और झनकारवाली आवाज निकलेगी। आगरा, मथुरा की काली मटकियां इसके लिये अधिक उपयुक्त हैं। पत्थर की तरह मटकी बजाना आसान काम नहीं है। मटकी बजाने के लिये तबला अथवा ढोलक का ज्ञान आवश्यक होता है। मटके का पेट तो, दाहिने हाथ से बजाये जाने वाले तबले का काम देता है और मुँह पर हथेली से थाप मारने से मटके के गर्भ से गंभीर आवाज निकलती

है। राजस्थान में भी इसके बजाने की प्रथा है। यह बहुधा लोकवाद्यों के रूप में ही विद्यमान है। इस पर कहरवा, दादरा, दीपचंदी आदि ठेके अक्सर बजाये जाते हैं क्योंकि अधिकांश गीत इन्हीं ठेकों व तालों पर बजते हैं। कुछ लोग अपने हाथ में घुंघरू बांध कर भी मटकी बजाते हैं, इससे ताल के साथ नृत्य का प्रभाव भी उत्पन्न होता है। कहीं-कहीं मटकी सत्संग तथा भक्तजनों के बीच में भी प्रचलित है। इकतारा, मजीरा, खड़ताल तथा मटकी मिलकर बड़ा प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

मटकी पर बकरी का चमड़ा मढ़ा जाता है।

ताशा—इसे अरबी ताशा भी कहते हैं। संभवत: अरब देश का वाद्य होने से यह अरबी ताशा कहलाया। इसका प्रयोग राजस्थान के दक्षिणी पश्चिमी भागों में अधिक होता है। रेगिस्तानी भागों में भी यह काम में लाया जाता है। ताशा एक चपटे और पतले नक्काड़े के शक्ल का वाद्य है जिसका पैंदा तांबे का होता है। यह चपटी परात की तरह होता है और इसके ऊपर बकरे का पतला चमड़ा मढ़ा रहता है। इस वाद्य को दो पतली बांसपटियों से बजाया जाता है। ताशा बजाने वाला पतली रस्सियों से इसे बांधकर फिर अपने गले में इसे बांध लेता है। इससे 'तड़बड़'-'तड़बड़' की आवाज निकलती है। यह साज संगीत की संगत का साज नहीं है। केवल विवाह-शादियों के जुलूसों में यह काम आता है। किसी जमाने में बैंड के अभाव में यही साज काम में लाया जाता था। यह कर्णकटु है और सुननेवालों को चौकन्ना कर देता है। इसकी ध्वनि से यह ज्ञात होता है कि यह साज किसी समय रण का वाद्य था। जब युद्ध क्षेत्र में घमासान युद्ध होता था तब रण कंकण के बाजों के साथ यह साज बजा करता था। क्षत्रिय वीरों की भुजायें इस वाद्य से फड़क जाती थीं। धीरे धीरे जब युद्ध खत्म हुए तो ताशेवालों की दुर्दशा हुई। इनका व्यवसाय इनके हाथों से छिन गया और इन्हें अपनी आजीविका के लिये विवाह-शादियों की शरण लेनी पड़ी। मुसलमानों के ताजिया त्यौहार में ढोल के साथ बहुत से ताशे बजाये जाते हैं। शेखावाटी की ओर कच्छी घोड़ी नाच में भी ताशा बजाते हैं। ताशे और झांझ का मेल है। इसे मुसलमान ही अधिक बजाते देखे गये हैं। रेगिस्तानी भागों में तो केवल मुसलमान ही इसे बजाते हैं।

नौबत—यह पाडे (भैंसे) की खाल की मँढ़ी जाती है। पूरे पाड़े की खाल ही इसके लिये पर्याप्त होती है । इसकी कुंडी सर्व धातु की बनी होती है। यह वाध (चमड़े की रस्सी) से गूँथी जाती है अर्थात् कसी जाती है। यह करीब ४ फीट ऊँची होती है। लगभग ६ बालिश्त इसकी लम्बाई व चौड़ाई होती है। यह चूड़िया उतार होती है। बंबूल या सीसम की चोब (डंकों) से यह बजती है। बजाने वाले के दोनों हाथों में चोब रहती है। अच्छी नौबत की आवाज ३-४ मील की दूरी तक चली जाती है। पहले किसी जमाने में यह वाद्य युद्ध के समय बजाया जाता था। वहाँ यह गाड़ी में या हाथी पर रहती थी। युद्ध में यह सबसे आगे रहती थी। इस पर ८ मात्रा का ठेका भी लगता है। इसकी आवाज में बड़ी गम्भीरता रहती है। इसकी खाल के भीतर राळ, हलदी, तेल (पकाकर) लगाये जाते हैं। आजकल बड़े मन्दिरों में इसका उपयोग होता है। राजा महाराजाओं के यहाँ अक्सर सुबह, शाम और दोपहर में यह बजा करती थी।

नकाड़ा—इसको नगारा, नगाड़ा और नक्कारा भी कहते हैं। यह भी नौबत की ही शक्ल का होता है। यह नौबत से छोटा होता है। इसके साथ इसी की शक्ल की नकाड़ी होती है जिसका इसके साथ जोड़ा है। नगारी को मादा और नगाड़े को नर कहते हैं। ये दोनों ही प्रायः साथ बजते हैं। नगाड़े में हरेक प्रकार के ठेके बजते हैं। इसकी बजाई बहुत सुन्दर लगती है। इस जोड़े का उपयोग इन इन जगहों पर होता है—शादी में प्रायः एक महीने पूर्व से ही ये बजाये जाते हैं। रामलीलाओं, ख्यालों, शेखावाटी और कुचामनी में ये बजाये जाते हैं। नोटंकी के ख्यालों में भी प्रायः यह बजता है। बड़े-बड़े मंदिरों में जैसे नाथद्वारा में श्रीनाथजी के यहाँ, गढबोर (चारभुजा), कांकरोली में श्रीनाथजी के स्थान पर धुलेव, केसरियानाथजी के यहां और एकलिंगजी आदि में ये बजते हैं। भैरूजी और माताजी के मंदिरों में केवल नगाड़ा ही बजता है। यह गींदड़ नृत्य (शेखावाटी) में भी बजता है। उधर चौक-चयानणी (गणेश चतुर्थी) के उत्सव के समय लगभग एक महीने जुलूस में बजता रहता है। नगाड़ा पाड़े की खाल का ही मँढ़ा जाता है। नगाड़ी छोटे पाड़े या बकरे की खाल की मँढ़ी जाती है। नौबत, नगाड़ा, और नगाड़ी तीनों की शक्ल एक है पर छोटे, बड़े के विचार से इनके

अलग-अलग नाम हैं। जोड़ में नगाड़े के साथ अक्सर शहनाई बजती है। ढोली लोग नगाड़े बजाने के कारण ही नगारची कहलाये। ये इस काम में बड़े प्रवीण होते हैं। शेखावाटी में राणा, मिरासी भी इन्हें बजाते हैं। मेवाड़ में नाथद्वारे का नगाड़ा बड़ा नामी है।

धौंसा—यह नगाड़े जैसा होता है जो घोड़े पर दोनों ओर रखा जाता है। यह युद्ध का वाद्य था। यह एक साथ नहीं बजता। एक बार 'कडंधा' की आवाज करदी जाती है फिर थमा दिया जाता है। थोड़ी देर ठहर कर फिर इसे बजाते हैं। इस पर ताल नहीं निकाली जाती है। शेखावाटी में विवाह के ढुकावों में अब भी कभी-कभी यह देखा जा सकता है।

ढोल—यह लोहे की गोल चद्दर पर दोनों ओर से मढ़ा जाता है। यह करीब चार बालिश्त लम्बा और तीन बालिश्त चौड़ा होता है। इस पर बकरे की खाल चढ़ती है। सूत की रस्सी या सन की रस्सी से इसे कसा जाता है। इसकी आवाज गम्भीर होती है। इस खाल को रसायनिक द्रव्यों से गम्भीर करते हैं। इसमें १८ या १६ कावे पड़े रहते हैं। यह एक मांगलिक वाद्य है। बहुत से स्थानों में हर त्योंहार और हर घर में बजता है। इसके लिये ऊंच-नीच का प्रश्न नहीं है। शादी में भी अक्सर बजता है। इसको मृत्यु-संस्कार के समय भी शोक समाप्त करने के लिये बजाते हैं। जान (बरात) को विदा करने के समय भी यह बजाया जाता है। शादी के शुरू में ढोल के भी स्वस्तिक का चिन्ह बनाते हैं। इसका पूजन होता है और इसके मोली चढ़ाते हैं। इस पर नृत्य होता है। अधिकतर घर की स्त्रियां मेवाड़ की ओर शादी और गणगौर के अवसर पर इस पर नाचती हैं। राजस्थान में यह बारह प्रकार से बजाया जाता है यथा एहड़े का ढोल, गेर का ढोल, नाचने का ढोल, मोटी ताल (देवरे के देवी देवताओं के सामने बजाई जाती है), बारू ढोल (लूट के समय बजाया जाता है), घोड़ चढी का ढोल (बींद घोड़े पर चढ़कर जाता है उस समय), बरात चढ़ी का ढोल, आरती का ढोल, वार त्योंहार का ढोल, सगरी को न्योतो (जीमने का निमंत्रण) आदि। इसको बजाने के लिये दो आदमियों की जरूरत भी होती है। यह वाद्य देवी-देवताओं के मंदिरों और गाँवों में भी पाया जाता है। किसी किसी ढोल में एक थाली भी अंदर बाँध देते हैं जिससे इसकी आवाज बहुत गूँजती है। राजस्थान के कई लोक-नृत्यों

में यह बजाया जाता है जैसे जालोर का ढोल नृत्य, भीलों का गेर नृत्य और शेखावाटी का कच्छी घोड़ी नृत्य। मुहर्रम त्योंहार के समय ताजिया निकालते समय मुसलमान भी इसको बजाते हैं। ढोल का जोड़ा थाळी, बांकिया है। मुसलमान लोग इसके साथ तासा बजाते हैं।

माद्ळ—यह गारे (मिट्टी) की बनी होती है। मोलेला (नाथद्वारा के पास) में बहुत अच्छी बनती है। यह कम ही कीमत अर्थात चार आने में ही मिल जाती है। यह पुराना लोक वाद्य है। इसको शिव-गौरी का वाद्य मानते हैं। लोगों का ऐसा मत है कि मृदंग इसीका विकसित और परिष्कृत रूप है। इसकी शक्ल मृदंग से मिलती-जुलती है। इसका एक मुँह छोटा होता है और एक बड़ा। छोटा मुँह १०-१२ अंगुल चौड़ा होता है इसको नारी कहते हैं और नर का मुँह १६ अंगुल का होता है। ऊपर की खाल को गोलाकार कर लिया जाता है। यह सूत या सन की रस्सी से खाल को छेदते हुए मँढी जाती है। इसमें कुंडल नहीं होता। इसके जौ के आटे का भोंअरा चिपकाया जाता है। नर की तरफ आटा ज्यादा लगाया जाता है नारी की तरफ कम। फिर इसमें से बड़ी मीठी आवाज निकलती है। माद्ळ प्रायः गौरी नृत्य में बजाई जाती है। भील लोग इसको बजाते हैं। पेशेवर जातियों में डाँगियों के भाट (वाहेती) इसको बजाते हैं। भीलों की शादियों में तथा ग्रामीण देवी-देवताओं के मंदिरों में इसको बजाया जाता है। इसके साथ थाली बजती है जो इसका जोड़ा है। गौरी नृत्य-नाट्य में भी इसको बजाते हैं तब इसके साथ ढोल बजता है। इस पर कहरवा और दादरे का ठेका अधिकतर बजता है।

मृदंग—बीया, सवन, सुपारी और बड़ला (बड़) पेड़ों की बनती है। इसकी पूड़ी तबले की माफिक होती है। इसका भी मुँह एक तरफ से चौड़ा और एक तरफ से सँकरा होता है। इस पर बकरे की खाल चढ़ती है। नारी की तरफ स्याही लगी हुई होती है और नर की तरफ आटा। यह वाद्य रावळ और रावीया जाति नाच में काम में लेती है। इसका दूसरा उपयोग ज्यादातर धार्मिक स्थानों, मंदिरों आदि में होता है। इसकी आवाज बड़ी मधुर होती है। इसको ग्रामीण लोग भी अपने ढंग से बजाते हैं। शास्त्रीय वादक अपने ढंग से काम में लेते हैं। रावियें

और रावळों की बजाने की शैली अलग ही रहती है। रावळिये लोग झाँझ को इसके साथ काम में लेते हैं।

ढोलक—यह भी इक वृक्षों की ही बनती है किन्तु नीमच और अलीगढ़ की ढोलकें विशेष प्रसिद्ध हैं। इसकी मँढाई ढोल की तरह होती है। लेकिन इसके कानों में कड़ियाँ होती हैं। इसकी खाल बकरे की होती है। इसके दोनों मुँह बराबर होते हैं। बीच का हिस्सा चौड़ा होता है, सिरे कुछ चूड़ी उतार होते हैं। ढोलक को नगारची, साँसी, कंजर, ढाढ़ी, मिरासी, कव्वाल, भवाई, रामलीला वाले, वैरागी साधु आदि बजाते हैं। तुर्रकलंगी आदि ख्यालों में भी यह बजती है। नट भी इसको बजाते हैं। जहाँ दूसरे लोग ढोलक को उँगलियों से और हाथ के गुट्टों से बजाते हैं वहाँ नट लोग बेंत के डंडे से नर की तरफ बजाते हैं। नारी की तरफ हाथ से बजाते हैं। इसके साथ बड़ा मँजीरा बजता है। वैसे यह वाद्य खुला है। ढोलक को रस्सियों से जकड़कर ऐसा शिकंजा तैयार किया जाता है कि यह आसानी से खींची और ढीली की जा सकती है। इसको दबाकर बजाने से अधिक माधुर्य की सृष्टि होती है। इसको ढोली भी बड़ी प्रवीणता से बजाते हैं। ढोलक के भी कई प्रकार राजस्थान में देखे जाते हैं। ढोलनियाँ और पातरनियाँ जो ढोलक बजाती हैं वह छोटी और बहुत मधुर होती है। मिरासिनियाँ जो ढोलक बजाती हैं वह कुछ बड़ी होती है। भवाइयों के साथ बजने वाली ढोलक आकार में सबसे बड़ी होती है। इसकी आवाज भी बुलंद होती है और मीलों तक लोग इसको सुन लेते हैं। ढोलक पर बजनेवाली तालें कहरवा, दादरा व दीपचंदी आदि हैं। नटों के लिये ढोलक अविच्छिन्न है, उनका यह बड़ा आवश्यक साज है। कठपुतली नट भी इसको काम में लाते हैं। ढोलक बजाने में भवाई बड़े कुशल हैं और उनका मुकाबला लोक-पेशेवर वादकों में अन्य बहुत कम ही कर सकते हैं।

चंग—इसका गोल घेरा लकड़ी का बना होता है। यह कम से कम तीन बालिश्त चौड़ा होता है। एक ही ओर से यह बकरे की खाल से मँढा जाता है। इसको मँढने में रस्सी आदि कोई दूसरी चीज काम में नहीं ली जाती है। जौ के आटे की लुआई (लेही) बना कर के घेरे के लगा देते हैं और उसके ऊपर फिर खाल चिपका देते हैं। फिर उसे छाया में सुखा कर काम में लेते हैं। इसको कंधे पर रखकर बजाते हैं।

इसको दाहिने हाथ से पकड़कर उसी से चिमटी मारते हैं जो नारी का काम करती है और बाँये हाथ से बजाते हैं। इस वाद्य को काळबेलिये बजाते हैं। होली के दिनों में हरेक जाति के लोग प्रायः इसे बजाते हैं। इस पर धमालें और चलत के गीत बजते हैं। इस पर कहरवे का ठेका लगता है। ख्यालों में तुर्राकलंगी वाले इसको बजाते हैं। इसको ढप भी कहते हैं। इसका छोटा रूप दफड़ा होता है। चमारों के ढोली अधिकतर दफड़ा बजाते हैं। चंग राजस्थान का लोकप्रिय लोकवाद्य है। इसी के संबोधित गीत मिलते हैं–

(१) ढप काहे को बजाओ जी बालम रसिया ढप काहे को।

(२) रंगीलो चंग बाजैगो।

(३) थारो ढप बाजै म्हारो इन्दरगढ़ हालै
सूती नार चिमक जागै रे, हबक जागै,
ढप काहे को?........

डैंरू—इसको ढाक भी कहते हैं। यह आम की लकड़ी का बनता है। यह डमरू का बड़ा रूप है। बजने में इसकी अलग ही विशेषता है। डैंरू एक छोटी लकड़ी से बजाया जाता है। यह बीच के हिस्से से दाहिने हाथ से पकड़ लिया जाता है; रस्सी को बजाते समय खींचने तानने पर नर, मादी की आवाज पैदा हो जाती है। इसके दोनों ओर के सिरे बराबर होते हैं जो चमड़े से मँढे हुए होते हैं। इसमें भी कुण्डल होती है किन्तु ढोलक से उलटी होती है। इसके साथ छोटी थाळी या काँसी का कचोळा (कटोरा) बजता है। मेवाड़ में भील लोग इसे बजाते हैं। गोगाजी के भोपे चमार भी रेगिस्तानी भागों में इसे बजाते हैं। अन्य भोपे भी इसे बजाते हैं और इस पर भारत गीत गाते हैं।

खंजरी—यह आम की बनी हुई होती है। इसकी चौड़ाई आठ दस अंगुल की होती है। इसको भी चंग की तरह एक ही तरफ से मँढते हैं। घेरे की चौड़ाई चार अंगुल की होती है। इसको दाहिने हाथ से पकड़ते हैं और बायें हाथ से बजाते हैं। बजने में यह अच्छी लगती है और दूर से ढोलक जैसी लगती है। निर्गुणी भजन वाले लोग इसको बजाते हैं। जैसे कामड़, आदनाथ, बळाई, भील आदि। ऐसी ही अन्य जातियाँ इसको बजाती हैं। काळबेलिये भी इसको बजाते हैं।

डमरू—डमरू का सम्बन्ध भगवान शिव से है और इस दृष्टि से यह बहुत पुराना वाद्य है। डमरू में दो रस्सी गाँठें वाली होती हैं। बीच में इसे पकड़ कर हिलाने से गांठ जब चमड़े पर पड़ती है तब आवाज होती है। डमरू ताल का काम नहीं करता है। डमरू ढँढ़ की तरह का ही होता है। इसके भी दोनों ओर चमड़ा मँढा रहता है। डमरू लकड़ी के भी बने होते हैं और मिट्टी के भी। डमरू अधिकतर मदारी लोग बजाते हैं। इसके साथ वे बाँसुरी भी बजाते हैं। यह केवल धाराप्रवाह बज सकता है और एक विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। इससे केवल कहरवा निकल सकता है जो आमतौर से बहुत ही प्रचलित ताल है। डमरू बजाने में किसी प्रकार के कौशल की आवश्यकता नहीं। मिट्टी के डमरू कुछ छोटे होते हैं। मदारी लोग आमतौर से काठ के डमरू काम में लेते हैं। मिट्टी के डमरुओं को बच्चे खिलौनों के रूप में बजाते हैं।

तार वाद्य

सारंगी—यह तुन, सागवान, कैर और रोहीड़ा वृक्ष की बनती है। लोक वाद्यों में इसका छोटा रूप होता है। किसी किसी के साथ में खूँटियाँ होती हैं किसी किसी में नहीं। ऊपर की ताँतें बकरे की आंतों की बनी हुई होती हैं। इसमें तेरह तुरपें होती हैं जो सब स्टील की बनी होती हैं। ताँतों को चार बड़े खूँटों से बांध दिया जाता है। ऊपर तुरपों को खूँटियों से बाँध दिया जाता है। सारंगी को गज से बजाया जाता है। गज के घोड़े के बाल बँधे हुए रहते हैं। गज को बेरजे से घिसा जाता है। लोक गायक सारंगी बजाते हुए उसके साथ गाते हैं जबकि शास्त्रीय संगीत में गायक का यह संगत (साथ) करती है। जैसलमेर की ओर इसे लंगे बजाते हैं। मेवाड़ में बनजारों के भाट इसे बजाते हैं। इन गांवों के नगारची लोग भी इसे बजाते हैं। देवी देवताओं के मंदिरों में यह बजाई जाती है; वहां इसके साथ वार्ताएं कही जाती हैं।

रेगिस्तानी भागों में जोगी भी सारंगी पर सुलतान निहालदे, गोपीचंद, भरथरी, शिवजी का ब्यावला गा कर सुनाते हैं। यह सारंगी कुछ सरल होती है। गड़रियों के भाट इसे मेवाड़ की ओर बहुत अच्छी बजाते हैं।

जंतर—इसमें ५-६ तार होते हैं। अंदर तुरपे नहीं होती। बदनरो केतथा सवाई भोज के भोपे इसे बजाते हैं। यह वीणा की तरह का होता है। बहुत संभव है वीणा का विकास इसी से हुआ हो। इसे गले में पहन कर खड़े-खड़े बजाया जाता है बगड़ावतों की कथा में यह प्रयुक्त होता है।

रवाज—यह सारंगी की तरह होता है। इसमें गज काम में नहीं लाई जाती। इसमें भी ताँतें होती हैं और थर का तार सन की रस्सी का होता है। वह नखों से बजाया जाता है। इसमें ८ तुरपें होती हैं। इसमें कुल १२ तार होते हैं।

रावणहत्था—बड़े आधे नारियल की कटोरी पर खाल मँढ़ दी जाती है। ऊपर बाँस होता है। बाँस के खूँटियाँ लगादी जाती हैं। इसमें भी सात आठ तुरपें होती हैं। इसके बजाने का ढंग बेले की तरह का होता है। यह सीने के लगाकर बजाया जाता है। वायलिन को उँगलियों के पोरों से बजाया जाता है जबकि यह उँगलियों के बीच के हिस्से से बजता है। इसकी गज धनुष की तरह की होती है। यह घोड़े के बालों से बँधी हुई होती है। इसके घुँघरू बंधे हुए होते हैं। ये गज फिराने के साथ साथ ताल का भी काम करते हैं। रावणहत्था पाबूजी के भोपे और डूँगजी जुँवारजी के भोपे बजाते हैं। पाबूजी के भोपों का रावणहत्था अपेक्षाकृत सुरीला होता है।

तम्बूरा—इसको निशान भी कहते हैं। गांव के लोग 'वेणो' भी इसे कहते हैं। चौतारा भी कहीं कहीं यह कहलाता है। इसके चार तार होते हैं। इसकी शक्ल सितार या तानपूरे से मिलती जुलती है। लेकिन इसकी कुंडी तुम्बे की नहीं होतीं, यह सारी लकड़ी की बनी होती है। इसके चार तार होते हैं। बजाने वाला इसको दाहिने हाथ से बजाता है और बाँयें हाथ से पकड़े रहता है। यह एक उँगली से बजता रहता है। बजाने के ढंग के साथ ही ताल भी निकलती रहती है। तार पर उल्टे-सुल्टे प्रहार किया जाता है। यह क्रिया तानपुरे की तरह होती है। कुंडी पर एक घोड़च लकड़ी की बनी हुई बैठा दी जाती है जिस पर तार चढ़ाये जाते हैं। इसके साथ करताल, मंजीरे, चिमटा आदि वाद्य बजाते हैं। इस वाद्य को अक्सर कामड़ बजाते हैं। रामदेवजी के भजन इस पर बोले जाते हैं। निर्गुण भजन बोलने वाले नाथ पंथी लोग इसी

वाद्य को काम में लेते हैं। उदाहरणार्थ अघोर पंथी, कुंडा पंथी, आद नाथ, दस नामी, बीस नामी, आढा भील, बळाई, रेंगर, चमार, भाम्भी, चमारों के ढोली आदि जातियाँ इसका प्रयोग करती हैं। तेराताली में भी यही बजता है। तेराताली वाले एक हाथ में तंदूरा रखते हैं, दूसरे हाथ से मंजीरा या करताल बजा लेते हैं।

अपंग—पहले यह लम्बे आल के तुम्बे का बनता था अब लोहे का भी बना लेते हैं। डेढ़ बालिश्त लम्बे और दस अंगुल चौड़े तुम्बे का यह बनता है। इसके चार बालिश्त की लकड़ी, तीन अंगुल चौड़ी, तुम्बे में खड़ी लगादी जाती है। आल का नीचे का हिस्सा खाल से मंढ दिया जाता है। ऊपर का खाली छोड़ दिया जाता है। यह पीपे के समान होता है। खाल के बीच में से तार निकालते हुए एक खूँटी से बाँध दिया जाता है। यह ताल का भी उपयोग करता है। यह खूँटी के सहारे बजता है। इसी के आधार पर ताल बजती है। खूँटी को ढीली करते और तानते हुए इसे बजाते हैं।

इकतारा—यह भी बहुत पुराना वाद्य है। नारदजी से इसका संबंध जोड़ा जाता है। यह आदि वाद्य है। एक छोटे गोल तुम्बे को लेकर उसमें बाँस फँसा दिया जाता है। थोड़ा सा हिस्सा काटकर बकरे के चमड़े से उसे मँढ देते हैं। बाँस के नीचे एक तार बाँध दिया जाता है, जिसे ऊपर लगी हुई खूँटी से कस देते हैं। कोई-कोई लोग इसके दो तीन तार भी बाँध लेते हैं। तार पर उँगली से ऊपर नीचे चोट करते हुए इसे बजाते हैं। बाँस का नीचे का भाग भारी और ऊपर का हलका होता है। इकतारा एक हाथ में ही पकड़ कर बजाया जाता है। दूसरे हाथ में करताल रखते हैं। इसको नाथ, काळबेलिये आदि बजाते हैं। सबद भी इसी पर बोलते हैं। कोई कोई ताल के लिये चिमटी का प्रयोग तुम्बे पर करते रहते हैं। यह सस्ता वाद्य है। साधु, सन्यासी, इसको प्रायः रखते हैं। मंदिरों एवं देवालयों के स्थानों पर आम जनता भी इसका प्रयोग करती है।

ताल वाद्य

मंजीरा—यह पीतल और काँसी की मिली हुई धातु का बना होता है। दो मंजीरों को आपस में टकराया जाता है। यह निर्गुणी भजनों के साथ तम्बूरे, तन्दूरे, इकतारे के साथ बजता है। ढप के साथ

तथा ढोल के साथ भी बजता है। यह बहुत ही लोकप्रिय और सस्ता वाद्य है। इसकी ध्वनि बड़ी मधुर होती है। भजनों के साथ तथा होली के गीतों में भी यह बजाया जाता है। इससे चाचर, कहरवा आदि तालें बजती हैं। तेरहताली वाले इसको बजाने में बहुत अभ्यस्त होते हैं। मंजीरे छोटे और बड़े भी होते हैं।

थाली—काँसी की बनी हुई होती है। इसका एक तरफ से किनारा छेद दिया जाता है। इसमें रस्सी या तार बँध कर अँगूठे में लटका लेते हैं। यह लकड़ी के डंके से बजती है। इसका प्रयोग मादळ, ढफ, ढोल, चंग आदि वाद्यों के साथ होता है। काळबेलिया, भील, बाहती इसको प्रायः बजाते हैं। थाली के समान ही कटोरा भी काम आता है। इसको गोगाजी के भोपे ढाक के साथ बजाते हैं। कटोरा (कचोला) रेगिस्तानी भागों में देखा जाता है।

झांझ—एक छोटे मंजीरे की बड़ी अनुकृति है। इसकी लम्बाई चौड़ाई एक फुट के लगभग होती है। झांझ का प्रयोग अधिकतर ताशे के साथ होता है। इसकी आवाज दिल को फड़काने वाली है। यह उत्तेजित करने वाला वाद्य है। कच्छी घोड़ी नृत्य (शेखावाटी) तथा बाजे के साथ भी इसका प्रयोग होता है। मोहर्रम में भी यह बजता है। युद्ध जैसी चीजों के साथ इसका सम्पर्क रहा होगा।

पत्थर—पत्थर से ताल निकालने की प्रथा कब से चल पड़ी, इसका सन संवत् बताना बहुत ही कठिन है। निश्चय ही यह कंगालों और निर्धनों का साज है और उपयुक्त साज-सामान के अभावों में पत्थर से ही ताल वाद्य का काम लिया जाने लगा। यही कारण है कि यह वाद्य विशेषकर भिखमंगों तथा साधु फकीरों के हाथ की शोभा है। रेल में, गली कूचों में, बाजारों में फेरी देनेवाले और भिखमंगे चंग, ढप तथा पत्थर बजाकर अपनी आजीविका कमाते हैं। दो छोटे-छोटे पतले और चपटे पत्थरों को ऊँगलियों में दबाकर दूसरे हाथ से उनसे ताल निकाली जाती है। आमतौर से पत्थर पर कहरवा ही बजता है और खड़ताल, मजीरे की तरह एक ही ताल इनसे निरंतर बजती रहती है। चाहे जिस पत्थर से मनचाही मधुर ध्वनि नहीं निकल सकती उसके लिये विशेष पत्थर के चुनाव की आवश्यकता होती है। इसके लिये करला, सख्त, चिकना तथा पतला स्लेटिया पत्थर सबसे अच्छा होता है। इस पत्थर को

झनकार कुछ अधिक होती है और आवाज मधुर होतीहै । पत्थर बजाने में सबसे अधिक निपुण अंधे साधु और भिखमंगे होते हैं। इनकी उँगलियों में गजब की करामात होती है और इकतारे के साथ पत्थर की धुन मिला कर ये अद्वितीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

खड़ताल—करताल से यह शब्द बना है जिसका मतलब है हाथ की ताल। सामूहिक गान के साथ ताल को सर्वाधिक जनसुन बनाने के लिये ही खड़ताल की उत्पत्ति की गई है, ऐसा मालूम होता है। यह लोक वाद्य भारत में बहुत जगह प्रचलित है। यह लगातार एक ही लय की ताल देने में प्रयुक्त होता है। कोई भी व्यक्ति थोड़े से अभ्यास से इसे बजा सकता है। बहुधा यह वाद्य साधु-संतों तथा भक्तजनों का है। खड़ताल भक्तों का ही सबसे प्रिय वाद्य है। यह मधुर वाद्य नहीं है। इसके साथ पीतल की जो गोल-गोल कटी हुई छोटी-छोटी तश्तरियाँ होती हैं उनकी झनकार इसे मधुर बना देती हैं। खड़ताल वैयक्तिक गाने के साथ इतना अच्छा नहीं लगता। यह तो सामूहिक गायन के साथ ही शोभित होता है। खड़ताल का साथ मजीरे एवं इकतारा विशेषकर करते हैं। खड़ताल और इकतारे का मेल है। भक्ति के गीतों के साथ ही खड़ताल-वादन की परंपरा चल पड़ी है। दूसरे गीतों के साथ खड़ताल वादन प्रायः नहीं होता। प्रत्येक भक्त के घर खड़ताल प्रायः मिल ही जायगी।

परिशिष्ट

राजस्थानी लोकगीतों की कुछ स्वर-लिपियाँ

लोकगीतों को साहित्यिक और संगीत की दृष्टि से आंका जाता है। अध्ययनकर्ताओं ने यह महसूस किया है कि लोकगीतों में भावोद्रेक या भावप्रवणता भी बहुत अच्छी मात्रा में मिलती है। साहित्यिक दृष्टि से लोकगीतों का मूल्यांकन हुआ है और कई संग्रह लोकगीतों के प्रकाशित भी हुए हैं किन्तु संगीत की दृष्टि से इनकी परख अभी तक सम्यक रूप में नहीं हुई है। भारतीय लोक-कला मंडल ने ध्वनिसंकलन-यंत्र द्वारा लोकगीतों की नाना प्रकार की ध्वनियों का संकलन किया है। समय-समय पर स्वर-लिपियों की पुस्तकें यहाँ के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित होती रहेंगी। अभी हमने कुछ चुने हुए राजस्थानी लोकगीतों की स्वरलिपियाँ देने का प्रयत्न किया है। लोकगीतों में संगीत का पक्ष कम नहीं है और कुछ गीतों का तो संगीत ही का पक्ष सुन्दर है, साहित्य का उतना नहीं। राजस्थान के ख्यालों में संगीत का ही पक्ष प्रधान रहा है अतएव उन्हें संगीत-नाटक ही कहना चाहिये। श्री श्याम परमार अपनी पुस्तक 'भारतीय लोक साहित्य' के पृष्ठ ७८ में लिखते हैं कि 'लोक गीत एवं लोक संगीत एक ही रथ के दो पहिये हैं—एक की अनुपस्थिति में दूसरा अनुपयोगी है।' आगे दी गई स्वरलिपियों के द्वारा इतर प्रान्त के संगीतज्ञ भी राजस्थानी गीतों का स्वर सौन्दर्य जान सकेंगे और तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन के लिये भी उनके लिये यह लाभप्रद पाथेय होगा। कुछ लोगों के मुंह से तो हमने यहाँ तक सुना है कि लोकगीतों में तो धुन-सौंदर्य ही है उनके बिना तो वे निष्प्राण से ही हैं। राजस्थानी लोक-काव्य और गीत के अध्येता एवं संपादक श्री मनोहर शर्मा लोकगीत के संगीत पक्ष के ही अधिक हामी और समर्थक हैं। भारतीय लोक-कला मंडल भी संगीत पक्ष को ही ले कर काम करता है। इसके खोज-विभाग ने प्रतिनिधि गीतों को राजस्थान के कोने कोने से चुना है और इन अनमोल मोतियों को यह

जनसाधारण के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहा है। इनकी स्वर-लिपियाँ नारायणलालजी गन्धर्व ने तैयार की हैं, जो यहाँ के प्रदर्शन विभाग के कर्मचारी हैं। उन्होंने ही इनमें निहित इनकी तालें-मात्रायें व्यक्त की हैं। राग रागनियाँ ढूँढने का कठिन प्रयत्न सर्व श्री बालकृष्णजी नायक, कला केन्द्र उदयपुर और श्री पुरुषोत्तमलालजी, नाथद्वारा ने किया है जो हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। माँड के गीतों की स्वरलिपियाँ श्री शोभाराम खोज विभाग के कार्यकर्ता की गायकी से बनी हैं। लोक-संगीत के सुन्दर नमूने देने का हमने प्रयत्न किया है। शेष बहुत सी स्वरलिपियाँ हमारे संग्रह में हैं। कला मण्डल का उद्देश्य लोकगीतों को एकत्रित करना और इनके स्तर को थोड़ा सँवार-सुधार कर इनको प्रस्तुत करना है फिर भी संगीत की दृष्टि से हमने इनको मूल रूप में ही रक्खा है। कुछ गीतों को ताल-दृष्टि से उनके अनुकूल सही तालों में बैठाने का अवश्य प्रयत्न किया गया है। उदाहरणार्थ मांडें, पीपली आदि हैं।

गीत संख्या १

ईंडोणी

स्थायी—पाड़ोसण बड़ी चकोर ले गई ईंडोणी।

अंतरा—ईंडोणी रे कारणें म्हारी सासू बोलै बोल। गम गई ईंडोणी।
ईंडोणी बनावे जाने देवुँ हीरा रो हार। गम गई ईंडोणी।
सासू सूती पोळ में सुसराजी पहरादार। गम गई ईंडोणी।
ईंडोणी रे कारणें म्हारा देवर दिल्ली जाय। गम गई ईंडोणी।
ईंडोणी बतावें जाने देवुँ मोत्या रो हार। गम गई ईंडोणी।

गीत-परिचय

यह गीत मारवाड़ की ओर प्रचलित है। इसे स्त्रियाँ, जब वे पानी भरने जाती हैं तब गाती हैं। पनघट पर भी जो उनके विनोद का स्थान है यह गीत स्त्री-समुदाय द्वारा गाया जाता है। यह वृन्दावनी सारंग है।

ताल कहरवा, मात्रा ८
स्थायी

							सनि
							पाऽ
सरे	रेस	रेप	मप	रे	स	रेप	मप
ड़ो	सण	वड़ी	ऽच	को	र	लेऽ	गई
रे	रे	स	सनि				
ई	डो	णी	पाऽ				
×				२			

अंतरा

प	प	प	प	मप	–	धप	मम
ई	डो	णी	रे	काऽ	ऽ	रणे	मारी
रेम	म	पध	पम	रे	स	रेप	मप
साऽ	सु	वोऽ	लेऽ	वो	ल	गम	गई
रे	रे	स	सनि	२			
ई	डो	णी	पाऽ				
×							
प	प	प	पम	मप	पध	पम	म
ई	डो	णी	अऽ	ताऽ	वेऽ	जाऽ	ने
रेम	म	पध	पम	रे	स	रेप	मप
देवु	छी	राऽ	रोऽ	हा	र	गम	गई
रे	रे	स	सनि				
ई	डो	णी	पाऽ				
×				२			

शेष अन्तरे इसी धुन में बजेंगे।

गीतार्थ

चकोर पक्षी चन्द्रमा को एकटक देखता रहता है। पड़ोसिन चकोर के समान ईंडोणी पर एकटक दृष्टि लगाये हुए थी, जिसने उसको उड़ा लिया। ईंडोणी चले जाने के कारण मेरी सासू बोल मार रही है। मुझे जो ईंडोणी बता दे उसे मैं हीरे का हार पुरस्कार स्वरूप भेंट कर दूँ। सासू पोल में सोई हुई थी और सुसरा जी पहरादार थे फिर भी वह चली गई। ईंडोणी बड़ी कीमती थी और थी अनुपम! उसी के कारण मेरा देवर दिल्ली जा रहा है। इस पंक्ति के दो अर्थ हो सकते हैं एक तो ईंडोणी बहुत मूल्यवान थी उससे इतना नुकसान हो गया कि मेरे देवर को कमाने के लिये दिल्ली जाना पड़ रहा है, दूसरा वैसी ही ईंडोणी के लिये देवर जा रहा है। राजस्थानी जीवन का चित्रण यह गीत कर देता है। राजस्थान जैसे प्रान्त में पानी भरने स्त्रियां पनघट पर जाती हैं। ईंडोणी पर रख कर दोगड़ लाती हैं। सुकुमारता, नखरा और सौन्दर्यपूर्ण दृश्य की झाँकी यह गीत उपस्थित करता है। कहीं कहीं ईंडोणी को चीड़ और मोतियों तथा गोटे से भी सजाते हैं। उसके लूम्बी लगाते हैं।

गीत संख्या २

जलो

(स्थायी और अंतरा)

जला रे, मूँ तो राज रा डेरा निरखण आई रे, प्राण प्यारी रा जला,
मीठा बोली रा जला रे, मूँ तो राज रा डेरा निरखण आई रे।
जला रे देखी आपरी डेरा री चतराई रे प्राण प्यारी रा जला,
मीठा बोली रा जला रे मूँ तो राज रा डेरा निरखण आई रे जला।
जला रे आमलियाँ पाकी ने हींदवारी रितु आई रे मिरगा नेणी रा जला,
सीता लंकी रा जला रे आमलीयां पाकी हींदवारी रितु आई रे जला॥

गीत और राग परिचय

यह विवाह का गीत है। जिस समय वधु-पक्ष के घर की स्त्रियाँ कुम्हार का चाक पूजने के लिये जाती हैं तब यह गीत गाती हैं। डेरा से तात्पर्य बरात के ठहरने के स्थान से है। इसमें सोरठ राग के स्वर हैं।

ताल कहरवा मात्रा ८

सस
जला

रेग	म	—	—	ग	—	रे	रेम
रेऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मूँ	ऽ	तो	ऽऽ
ग	गरे	सा	—	ग	—	गम	पप
रा	जऽ	रा	ऽ	डे	ऽ	राऽ	ऽऽ
म	गरे	ग	म	प	धनि	ध	मध
नि	रऽ	ख	ण	आ	ऽऽ	ई	ऽऽ
प	—	पध	प	मप	म	गरे	गम
रे	ऽ	आऽ	ण	प्याऽ	री	राऽ	जऽ
प	—	पध	प	मप	म	गरे	गम
ला	ऽ	मीऽ	टा	चोऽ	ली	राऽ	जऽ
प	—	म	—	ग	—	रे	रेम
ला	ऽ	रे	ऽ	मूँ	ऽ	तो	ऽऽ
ग	गरे	सा	—	ग	—	गम	पप
रा	जऽ	रा	ऽ	डे	ऽ	राऽ	ऽऽ
म	म	म	म	स	—	रेग	—
नि	र	ख	ण	आ	ऽ	ईऽ	ऽ
रे	—	—	ग	सस	—	स	स
×	ऽ	ऽ	ऽ	जला २	ऽ	ज	ला

अंतरा

रेंग	म	—	—	ग	—	रें	रम
रंऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हे र	ऽ	खी	ऽऽ
ग	गरें	सा	—	ग	—	गम	पप
आ	पऽ	रा	ऽ	ई	ऽ	राऽ	ऽऽ
म	गरें	ग	म	प	धनि	ध	मध
री	ऽऽ	च	त	रा	ऽऽ	ई	ऽऽ
प	—	पध	प	मप	म	गरें	गम
रें	ऽ	आऽ	ण	प्याऽ	री	राऽ	जऽ
प	—	पध	प	मप	म	गरें	गम
ला	ऽ	मीऽ	टा	वोऽ	लो	राऽ	जऽ
प	—	म	—	ग	—	रें	रेंम
ला	ऽ	रें	ऽ	मूँ	ऽ	तो	ऽऽ
ग	गरें	सा	—	ग	—	गम	पप
रा	जऽ	रा	ऽ	हे	ऽ	राऽ	ऽऽ
म	म	म	म	स	—	रेंग	—
नी	र	व	ण	आ	ऽ	ईऽ	ऽ
रें	—	—	ग	सस	—	स	स
रें	ऽ	ऽ	ऽ	जला	ऽ	ज	ला
				र			

नोट—इसका स्थायी और अंतरा समान है। प्रायः स्थायी ही की तरह अंतरा भी गाया जाता है। फिर भी अंतरा दे दिया गया है। शेष सब उक्त प्रकार से ही बजेगा।

संक्षिप्त भावार्थ

हे स्वामी मैं तो आपका डेरा (निवास स्थान) देखने के लिये आई हूँ। प्राण प्यारी और मधु वैनी के आप स्वामी हैं। मैं तो आपका डेरा देखने के लिये आई हूँ। मैंने आपके डेरे का चातुर्य्य देखा। आम पकने को आ गये हैं (यौवन की ओर संकेत है), सीता लंकी के आप स्वामी हैं। सीता शब्द आदर्श और भारतीय संस्कृति (पतिव्रत धर्म) तथा कर्तव्य व्यक्त करता है। 'आमलिया पाकी' के भाव से मिलती वधावा गीत की ये पंक्तियाँ देखिये

'आम्बा जी पाक्या नींबूवे फल लाग्या
डाल गई असराल सखि री नींबूवे फल लाग्या।'

गीत संख्या २

लूर (घूमर)

स्थायी—सागर पाणीडे ने जाऊँ सा हो नजर लग जाय

अंतरा—म्हारी हिंगलूरी टीकी रो रंग उड़ जाय—
म्हारी हिंगलू री टीकी ए गरद भर जाय
" मारी सोसन्या साड़ी रो रङ्ग उड़ जाय.......सागर०
" मारी पतली कमर ढोला लुळ लुळ जाय....... "
" मारी सामली हवेली वालो लारे लग जाय....... "

गीत और राग परिचय

यह मारवाड़ की ओर गाया जाने वाला लूर (घूमर) का गीत है। बालिकाओं एवं स्त्रियों द्वारा नृत्य किया जाता है। यह गीत राजा-रजवाड़ों के यहां भी गाया जाता था। यह मारवाड़ की स्त्रियों का सामुदायिक गीत है। यह तिलक कामोद में है।

ताल कहरवा, मात्रा ८

						म	मम
						सा	गर
म	प	म	ग	गम	म	पध	धप
पा	णी	इँ	ने	जाऊँ	सा	होऽ	नऽ
धनि	नि	ध	धप	म	–	म	मम
जऽ	र	ल	गऽ	जाय	ऽ	सा	गर
म	प	म	ग	गम	म	पध	धप
पा	णी	इे	ने	जाऊँ	सा	होऽ	नऽ
धनि	नि	ध	धप	म	–	नि	नि
जऽ	र	ल	गऽ	जाय	ऽ	मा	री
नि	–	नि नि	नि	ध	–	प	म
हिं	ऽ	गळ	री	टी	ऽ	की	रो
पध	ध	प	प	म	–	म	मम
रंऽ	ग	उ	ड़	जाय	ऽ	सा	गर
×				२			

टिप्पणी—शेष अन्तरे इसी प्रकार बजेंगे।

गीतार्थ

यदि मैं सागर पानी भरने के लिये जाऊँ तो मुझे नजर लग जाय। मेरी देदीप्यमान हींगळू की टीकी गरद (चलने फिरने से जो बारीक धूल उठती है) भर जाय। वह गरद चमकदार हींगळू की टीकी को मैली बना दे। मेरी आसमानी साड़ी का रंग उड़ जाय। मेरी पतली कमर ढोला! लूळ (झुक) जाय, आते समय गगरी पानी की भरके लाऊँगी। हमारे सामने वाली हवेली (भवन) में रहने वाला मेरे पीछे हो ले। वह

गीत सुकुमारता का द्योतक है। दूसरे शब्दों में इसे नखरा या नजाकत कह सकते हैं। गीत फिर भी उर्दू शायरी की तरह अतिशयोक्तियों से बच कर, उपहासास्पद नहीं हो सका है। कोई भी चीज हमें ऐसी नहीं लगती जो खिलवाड़ हो जाय। वैसे साहित्य में अतिशयोक्तियों और अत्युक्तियों का भी प्रयोग होता है। इसमें साहित्यिक गुण पराकाष्ठा पर पहुँचा है और तुलसीदासजी का

'पुरते निकसी रघुवीर वधु धर धीर धरे मग में डग द्वै
झलकी भरी भालकनी पल की पट सूख गये मधुराधर द्वै'

भी फीका ही रह जाता है। अन्य एक लोकगीत में भी सुकुमारता का वर्णन आया है—

'तावड़ा मदों पड़ ज्या रे, किरण बादल में बढ़ ज्या ए
गोरी रो नाजुक बदन, सुरज बादल में छिप ज्या रे'

अर्थ—हे धूप तुम मंदी पड़ जाओ, किरण बादल में घुस जाओ, गोरी का बदन बड़ा सुकुमार है, अतएव सूरज तुम बादल में छिप जाओ।

गीत संख्या ४

मूमळ

स्थायी :—काळी तो काळी काजळिया री रेख सा
काळी तो बादळ में चमके बीजळी
ढोलारी मूमळ हाले तो ले चालुँ मुरधर देश।

अंतरा :—सीस मूमळ रो बागड़ीयो नारेळ सा
चोटी तो मूमळ री बासग नाग जी। ढोलारी····
नाक मूमळ रो सूवा केरी चांच सा। ढोलारी····
आँखियाँ मूमळ री प्याला मद भरिया। ढोलारी····
पेट मूमळ रो पीपळीयारो पान सा
छतियाँ मूमल रे भंवरा भंवरिया। ढोलारी····

गीत परिचय

मूमळ राज-रजवाड़ों की महफिलों का भी गान है; गायक लोग संगीत की बारीकी से इसे सुनाते हैं तो घूमर नृत्य में भी इसे सरल ढंग से महिलायें गाती हैं।

यह माँड है जो देश में गाया गया है। इसमें कोमल निषाद का प्रयोग नहीं करते हुए भी देश की झाँकी बिल्कुल स्पष्ट है।

ताल दादरा मात्रा ६

ग	ग	मग	रे	सा	—
का	ली	जांऽ	का	ली	ऽ
रे	म	म	प	ध	—
का	ज	लि	या	री	ऽ
पध	नि	सां	निध	प	—
रेंऽ	ऽ	ल	माऽ	ऽ	ऽ
सं	सं	—	नि	ध	—
का	ली	ऽ	ने	वा	ऽ
पध	म	—	पध	ध	—
दूळ	में	ऽ	चम	कै	ऽ
गम	धप	म	गरे	सरे	सम
थांऽ	ऽऽ	ज	लीऽ	ऽऽ	ऽढो
रे	म	—	प	ध	ध
ला	री	ऽ	मू	म	ळ
x			०		
म	प	—	धप	ध	म
हा	के	ऽ	तोऽ	ऽ	ले
ग	रे	—	सरे	गरे	गरे
चा	लूँ	ऽ	सुर	धऽ	ऽर
सा	—	—	—	—	—
है	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म
x			०		

टिप्पणी—इसका स्थायी की ही तरह अंतरा भी बजेगा।

गीत का अर्थ

इसमें मूमळ का नखशिख वर्णन किया गया है। नखशिख वर्णन करने की भारतीय साहित्य की परम्परा रही है। संस्कृत काव्यों और हिन्दी के काव्यों में नखशिख वर्णन मिलता है। मूमल की काली काली काजळिया की रेख में आंखों अथवा वदन की चमक अथवा स्वयं चमकती आंख, ऐसी लगती है मानों काले बादल में बिजली चमक रही हो। ढोला की मूमल चले तो मुरधर देश ले चलूँ। मूमळ का सिर बागड़ प्रदेश (डूँगरपुर-बाँसवाड़ा) के नारियल के समान है, चोटी वासक नागिनी के समान है। नाक मूमल का सूवे की सी चोंच है, आंखें मूमळ की ऐसी हैं जैसे मद का प्याला भरा हुआ हो। इतनी मदमाती उसकी आंखें है कि दूसरों को देखने मात्र से मतवाला बना देती हैं। तुलना कीजिये—

(१) काली आंखों में कैसी यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भरदी किसने नीलम की प्याली ?(आंसू)

(२) 'अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जो चितवहु एक बार ॥'

पेट मूमल का पीपल के पत्ते की तरह है अर्थात् छाती चौड़ी और कमर पतली है। उसके वक्षस्थल पर भौंरे मंडरा रहे हैं, भ्रमित हो रहे हैं। गीत में मनुहार की गई है—चले तो ले चलूँ— जबरदस्ती नहीं है। यह शृंगारिक गीत है।

गीत संख्या ५

घूमर

स्थायी-मारी घूमर छे जी नखराली ए मा, गोरी घूमर रमवा म्हे जासां।

अंतरा-मारी सात सहेलियांरो झुमको ए मा, गोरी घूमर रमवा म्हे जास्यां।

माने रमता ने लाड़ूड़ा लादा ए मा, गोरी घूमर रमवा म्हे जास्यां।

मारी रणक झणक पायल बाजे ए मा, गोरी घूमर रमवा म्हे जास्यां।

मारी आलीजारीबोली मोत्यां तोलीए मा, गोरी घूमर रमवा म्हे जास्यां।

गीत परिचय

यह घूमर का सब से प्रसिद्ध गीत है जो थोड़े से शब्दों के परिवर्तन से मारवाड़ और मेवाड़ में समान रूप से प्रचलित है। इसमें बालिकाएँ और स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। विशेषतया यह गणगौर के समय ही गाया जाता है। इसका स्थायी और अंतरा समान है। घूमर के स्वर बड़े मोहक हैं।

इस सारंग में एक प्रकार की विशेषता देखी जाती है, वह यह है कि धैवत, गंधार नहीं होते हुए भी कोमल गंधार और शुद्ध धैवत का प्रयोग किया गया है जो इस राग की रंजकता को और भी अधिक निखारता है। यह जलधर सारंग है।

ताल कहरवा मात्रा ८

						ग	म
						मा	री
प	—	प	प	प	पध	पम	म
घू	ऽ	म	र	छे	जीऽ	नऽ	ख
रे	म	पध	पम	रे	—	रेग	रेस
रा	की	अंऽ	ऽऽ	मा	ऽ	गोऽ	रीऽ
सरे	नि	—	नि	स	स	रेसपध	मप
घुऽ	म	ऽ	र	र	म	घाऽऽऽ	ऽऽ
र	—	नि	—	स	—	ग	म
म्हे	ऽ	जा	ऽ	सा	ऽ	मा	री
×				२			
प	—	प	प	प	पध	म	—
सा	ऽ	त	स	हे	ल्याँ	रो	ऽ

रे	म	पध	पम	रे	—	रेग	रेस
जु	म	कोऽ	एऽ	मा	ऽ	गोऽ	रीऽ
सरे	नि़	—	नि़	स	स	रेमपध	मप
घूऽ	म	ऽ	र	र	म	वाऽऽऽ	ऽऽ
रे	—	नि़	—	सा	—	ग	म
म्हे	ऽ	जा	ऽ	सां	ऽ	मा	ने
×				२			

(टिप्पणी—शेष अंतरे इसी प्रकार बजेंगे)

भावार्थ—एक बालिका अपनी माँ से मनुहार (विनती) कर रही है कि हमारी घूमर बड़ी नखराली है अतएव कुमारिकाओं की घूमर में मैं जाऊँगी। सात सहेलियों का झूमका मेरे साथ है। भाव है मैं अकेली नहीं जा रही हूँ। घूमर रमते (नृत्य करते) समय मुझे लड्डू खाने का सा आनंद आया (यह लाक्षणिक प्रयोग है) लाड्डू मिल गये का तात्पर्य है आनन्द आया। मेरी पायल रणक-झणक करती है। रणक-झणक पायल का शब्द अनुकरणात्मक है। शब्दमात्र ही ध्वनि को व्यक्त करते हैं। 'कंकण क्वणित रणित नूपुर थे' (कामायनी, चिंतासर्ग) में भी लगभग ऐसा ही प्रयोग है। मेरे प्रेमी की बोली इतनी अनमोल है कि वह हीरों से तोलने लायक है अर्थात् जैसे हीरे बड़े मूल्यवान हैं वैसी ही वह है। कहीं मोत्यां तोली कह देते हैं। भाव यही है। इस गीत में उल्लास है और रोमांस भी। यह बालिका का उत्साह व्यक्त करता है।

गीत संख्या ६

गणगौर

स्थायी—खेलण दो गणगौर भँवर माने खेलण दो गणगौर,
मारी सखियाँ जोवे बाट हो भँवर माने खेलण दो गणगौर।

अंतरा—माथा ने मेमद लावजो मारे माथा ने मह्मद लाव,
मारी रखड़ी रतन जड़ावो हो भँवर माने खेलण दो गणगौर।

काना ने जालज लावजो मारं काना ने जालज लाय,
मारं झुटणा जोळ दिरायो हो भँवर माने खेलण दो गणगोर।
मरने जो मादळ लावजो मारं मरने मादळ लाय,
मारं कंचवे कोर दिरायो हो भँवर माने खेलण दो गणगोर।
हिवड़ा ने हाँसल लावजो मारं हिवड़ा ने हाँसल लाय,
मारं तमण्यां पाट पोयायो हो भँवर माने खेलण दो गणगोर।
पगां ने पायल लावजो मारं पगा ने पायल लाय,
मारं चींछिये लूँब लगायो हो भँवर माने खेलण दो गणगोर।

गीत परिचय

यह गणगोर का गीत है जो मेवाड़ की ओर अधिक प्रचलित है। इधर बूंदी में भी इसे स्त्रियाँ गाती हैं। यह मिश्र कामोद राग में है।

दीपचंदी मात्रा १४

प़	नि़	नि़	सा	—	स	स	नि़	स	सा	निस	रे	गरे	ग
खे	ल	ण	दो	ऽ	ग	ण	गो	र	भँ	वर	मा	नेऽ	ऽ
स	ग	—	रेस	—	रेगमप	मग	रे	—	—	—	—	रे	ग
खे	ल	ऽ	णदो	ऽ	गऽऽऽ	णऽ	गो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मा	री
मम	म	गरे	ग	—	रेस	रे	निनि	स	स	निस	रे	गरे	ग
माँग	याँ	ऽऽ	जो	ऽ	डबे	ऽ	पाट	हो	भँ	वर	मा	नेऽ	ऽ
स	—	ग	रेस	—	नि़	रे	सा	—	—	—	—	—	—
खे	ऽ	ल	णदो	ऽ	ग	ण	गो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०			३				x			२			

नोट:—इसका अंतरा भी इसी प्रकार बजेगा। स्थायी और अंतरा समान है।

गीतार्थ

भँवर हमें गणगौर खेलने दीजिये, हमारी सखियाँ प्रतीक्षा कर रही हैं। मेरे माथे के लिये मइमद लाना और रखड़ी को रत्नों से जड़ाना। मेरे कानों के लिये जाळ आभूषण लाना और जुटणों के सोने का झोल दिलाना। सर के लिये साळू लाना और चोली के किनारी (गोटे की) लगाना। हिवड़े के लिये हाँस लाना और तमन्या को पाट से पोवाना। (तमन्या सोने का बनता है) पैरों के पायल लाना और बिछिये के लूँब लगवाना। गणगौर खेलने की उत्सुकता इस गीत में व्यक्त हुई है। साथ ही आभूषणों के लिये प्रार्थना इस गीत में अभिव्यक्त हुई है। गणगौर के त्यौहार पर स्त्रियाँ सुसज्जित रहती हैं। एक स्त्री अपने पति से यह मनुहार कर रही हैं। गणगौर त्यौहार पर घूमर नृत्य द्वारा मनोरंजन बड़ा स्वाभाविक होता है।

गीत संख्या ७

गोरबंद

स्थायी

गायाँ चरावती गोरबंद गूँथियो, भेस्याँ चरावती पोयो हो राज,
मारो गोरबंद नखराळो।

अंतरा

चवदा विसी में जाकूडो मोलायो, मारो भूरियो जाकूड़ो तरस्यो जावे हो राज,
मारो गोरबंद……

आठ कुवा नोलख बावडी मारी पणियारयाँ रीती जावे हो राज,
डूँगर चढ़ी ने गोरबँद गायो, मारी जोधाणा कचेड़ी हमळायो हो,
मारो गोरबंद……

खारा समद सूँ कोड़ा मँगाया, गढ़ बीकानेर जाय पोया पोया राज
गोरबंद थारे कारणे गुतो नव दिन नरणी रंगी रंगी राज
मारो गोरबंद……

गीत एवं राग परिचय

गोरबंद रेगिस्तानी प्रदेश का लोकप्रिय गीत है जो ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक प्रचलित है। किसान, बालक एवं बालिकाएं इसे अधिक गाते हैं। इसका राग यमन कल्याण है।

ताल कहरवा मात्रा ८

धध	—	धध	धध	मप	पध	पम	म
गायाँ	ऽ	चरा	वतां	गोर	बंद	गूंथी	यो
मप	—	पप	पप	मप	पध	ध	धध
भैस्यां	ऽ	चरा	वतां	पायो	होऽ	राज	मारो
मप	पध	धध	पम	म	—	—	—
गोर	बंद	नख	राऽ	ळो	ऽ	ऽ	ऽ
+				२			

अंतरा

मध	धध	ध	ध	मप	पध	पम	मम
चव	दा त्रि	सौ	में	जाकू	डो मो	ला यो	मारो
मप	पप	पप	पध	मप	पध	ध	धध
मूरि	यो जा	कूडो	तरस्यो	जावे	होऽ	राज	मारो
मप	पध	धध	पम	म	—	—	—
गोर	बंद	नख	राऽ	ळो	ऽ	ऽ	ऽ
+				२			

टिप्पणी—इसका भी स्थायी और अन्तरा लगभग समान है। शुरू में थोड़ा एक दो स्वर का फर्क है। शेष अंतरे इसी अंतरे की तरह ही बजेंगे।

गीतार्थ

गायें चराते समय मैंने गोरबँद गूँथा और भैंसे चराते समय इसको पाया। हमारा गोरबंद बड़ा नखराला है। २८०) रुपये में ऊँट मोल लिया गया, हमारा मूँद रङ्ग वाला ऊँट गोरबंद के लिये तरस रहा

है। गोरवंद ऊँट का आभूषण है, और है उसका शृङ्गार। आठ लाख कूवे और नौ लाख बावड़ी हैं फिर भी हमारी पणिहारियाँ रीति (खाली) जा रही हैं। प्रेम की प्यास नहीं मिट सकी। पहाड़ पर चढ़कर मैंने गोरवंद का गीत गाया और जोधपुर की कचहरी तक सुना गया। खारे समुद्र से कोड़े मँगवाये और बीकानेर के गढ़ में जा कर उनको पिरोया। फिर उनको गोरवंद में लगाया। गोरवंद के बनाने में मैं तो इतनी तल्लीन हुई कि नौ दिन भर तक भली प्रकार अन्न जल भी ग्रहण नहीं कर सकी। मुझे जल और भोजन की सुध ही नहीं रही। कितनी भावना-प्रधान पंक्ति है। गीत में बड़ी आत्मीयता है।

गीत संख्या ८

बधावा

स्थायी—हेली रँगरो बधावो मारे नत नवो ए

अन्तरा—हलो ए मलो ए हेली बागा में चालाँ
बागा में जाय हेली काँई कराला
आपी आछी २ कलियाँ चूँटा ए—हेली रँगरो०

अन्तरा—कलियाँ चूँटी ने हेली काँई कराँला
आपी आछा आछा गजरा गूँथा ए—हेली रँगरो०

गजरा गुँथी ने हेली कांई कराँला
आपी साहिबजीरी सेजां जावाँ ए—हेली रँगरो०

सेजा में जाय हेली काँई करोला
आपी आछो आछो वंश बधावा ए—हेली रँगरो०

गीत परिचय

यह गीत विवाह का गीत है जो मेवाड़ की ओर अधिकतर प्रचलित है। स्त्रियाँ वधू (बेटी) को पहुँचा कर वधू के घर आती हैं उस समय यह गाया जाता है। इसकी राग देश है।

स्वर-लिपि

ताल दीपचन्दी मात्रा १४

												रेप	म
												हेऽ	ली
गग	रेस	नि़	सस	गरे	रेग	मम	गग	रेस	नि़	स	—	रेप	म
रंग	ऽरो	व	धाओ	माऽ	रेऽ	ऽऽ	नत	ऽन	वो	अे	ऽ	हेऽ	ली
×			२				०			३			

अंतरा

पप	नि़	नि़	स	—	रेग	ग	रेग	मग	रे	नि़	—	स	—
हलो	अे	म	लो	ऽ	हेऽ	ली	बाऽ	ऽगां	में	चा	ऽ	लां	ऽ
प	नि़	नि़	सस	—	रेग	ग	रेग	मग	रे	नि़	—	रेस	पप
बा	गां	में	जाये	ऽ	हेऽ	लि	कंऽ	ऽई	क	रां	ऽ	ऽलां	आछी
पप	पम	धप	मम	—	ग	रेस	सग	रेग	पम	गरे	—	रेप	म
आछी	आऽ	ऽछी	कळी	ऽ	यां	ऽऽ	चूँऽ	टांऽ	ऽऽ	अे	ऽ	हेऽ	ली
×			२				०			३			

टिप्पणी—शेष अन्तरे इसी धुन में बजेंगे

गीतार्थ

हे सखी ! आनन्द का बधावा हमारे सदा ही नया है। प्रसन्नता से सखी हम बागों में चलें। बागों में जा कर हेली क्या करेंगे ? हम अच्छी-अच्छी कलियाँ चूँटेंगे। कलियाँ चूँट कर हेली क्या करोगी ? हम अच्छे अच्छे गजरे गूँथेंगे। गजरा गूँथकर सहेली क्या करोगी ? हम साहिबजी (पतिदेव) की सेज पर जावेंगे। सेजों पर जाकर सहेली क्या करोगे ? हम अच्छा अच्छा वंश बधायेंगे ! (बढायेंगे)

लोकगीतों में प्रश्न और उत्तर प्रायः मिलते हैं। गीत के अन्त में अच्छा आदर्श दिखाया है। काम शक्ति का तुष्टीकरण संतानोत्पत्ति के लिये है और वह भी श्रेष्ठ संतान पैदा करने के लिये। हमारा कर्तव्य अपनी संतानों को अच्छा बनाना है।

गीत संख्या ६

ओलूड़ी

स्थायी—अंदाताजी कुणी रे देसड़ली ओलूड़ी लगाई रे मारा सेण
अंदाताजी ओलूड़ी आवे छे अब छाने छाने रे मारा सेण

अंतरा—ओलू हरिया डूँगरां, ओलू मज मेवाड़।
ओलू प्यारी जी रे घूँघटे, साड़ना रे रुमाल ॥ ओलूड़ी लगाई रे....
आपरी ओलू में करां, मारी करे ना कोय।
ओलू कर पीळा पड्या, लोग जाणे पंड रोग ॥
अंदाताजी परदेशां पधारो, लारा माने लीजो सा मारा सेण
परणाई पीळा पोतड़ा, मेली ऊमरकोट।
एक संदेसारां साबला, काँई थारें कागजिया रा टोट ॥
अंदाताजी ओलूड़ी रा डेरा अब नेड़ा दीजो रे मारा सेण

गीत परिचय

यह ओलू (विदाई) का गीत है। अधिकतर दमामी इस गीत को गाती हैं। यह भी माँड ही का एक प्रकार है। इसमें दोहों का प्रयोग हुआ है। यह गीत राजाओं से सम्बंधित है। इसमें तिलंग और देश सम भाग में कार्य कर रहे हैं। अपने अपने अंग की विशेषता है। जैसे देश पंचम बतलाता है वैसे तिलंग अपनी निषाद को भी नहीं छोड़ता। इस प्रकार इसका राग देश तिलंग मिश्रित है।

स्वर लिपि—ताल कहरवा मात्रा ८

स्थायी

नि	नि	सांनि	धनि	सां	—	—	नि
अं	दा	नाऽ	ऽऽ	जी	ऽ	ऽ	कुं
सं	धनि	सांरें	सं	नि	ध	प	—
गी	रेंऽ	ऽऽ	दे	स	इ	ली	ऽ
प	ध	प	म	ग	म	रेग	सारे
ओ	लु	डी	ल	गा	ई	रेऽ	ऽऽ
—	ग	—	म	प	—	—	—
ऽ	मा	ऽ	रा	से	ऽ	ऽ	गु
नि	नि	सांनि	धनि	सां	—	—	नि
अं	दा	नाऽ	ऽऽ	जी	ऽ	ऽ	ओ
सं	धनि	सांरें	सं	नि	ध	प	—
लु	डीऽ	ऽऽ	आ	वे	ऽ	छे	ऽ
प	ध	प	म	ग	म	रेग	सारे
अ	ब	आ	ने	आ	ने	रेऽ	ऽऽ
—	ग	—	म	प	—	—	—
ऽ	मा	ऽ	रा	से	ऽ	ऽ	ग
२				×			

दोहा

नि	नि	निनि	नि	सं	निसं	—	निनि
ओ	लु	ड्रूरि	या	डूँ	गरां	ऽ	ऽऽ
पप	मम	ग	ग	ग	गरे	गम	ग
ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ओ	लु	मऽ	जमे	वा
—	—	म	म	मम	मम	प	—
ऽ	ळ	ओ	लु	प्यारी	जीरे	घूं	ऽ
प	मप	धनि	धप	—	गग	ग	सरे
घ	टेऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	साढ़	ना	रेऽ
गम	म	ग	—				
ऽऽ	रू	मा	ल				

प	ध	प	म	ग	म	रेग	सरे
ओ	लु	ळी	ल	गा	ई	रेऽ	ऽऽ
—	ग	—	म	प	—	—	—
ऽ	मा	ऽ	रा	से			
२				×			

दोहा

निनि	नि	नि	नि	सं	निसं	—	निनि
आप	री	ओ	ळूँ	में	गरां	ऽ	ऽऽ

पप	मम	ग	ग	ग	ग	सारे	गप
ऽऽ	ऽऽ	ऽ	मा	री	क	रेऽ	ऽऽ
म	ग	—	म	म	मम	म	प
तां	को	य	ओ	लूँ	कर	पी	ळा
प	मप	निध	प	—	ग	गग	गरे
प	हुया	ऽऽ	ऽ	ऽ	लो	गना	रोऽ
गम	ग	—	—				
पंड	रो	ऽ	ग				

नि	नि	सांनि	धनि	सं	—	—	निनि
थां	दा	ताऽ	ऽऽ	जी	ऽ	ऽ	पर
नि	पंनि	संरें	नि	नि	ध	प	—
दे	शांऽ	ऽऽ	प	था	ऽ	गे	ऽ
प	ध	प	म	ग	म	रेग	सारे
ला	रा	मा	ने	ली	जो	रेऽ	ऽ
—	ग	—	म	प	—	—	—
ऽ	मा	ऽ	रा	मैं	ऽ	ऽ	रा
२				x			

शेष अंतरे इसी प्रकार बजेंगे

गीतार्थ

अन्न देने वाले आप कौन से देश जा कर बैठ गये मेरे स्वामी! छिप छिप कर अब आपकी याद आती है। हरियाले पहाड़, मेवाड़ के

बीच के भाग को, मेरे घूँघट को और आपके द्वारा भेंट किए गये हाथ रुमाल को देख कर आपकी याद आती है। आपकी याद तो मैं करती हूँ किन्तु मेरी याद कोई नहीं करता। आपकी याद कर कर मैं पीली पड़ गई हूँ। लोग ऐसा जानते हैं कि पीलिये रोग से पीड़ित हूँ। अन्न दाता जी जब आप परदेश पधारो तो आपके साथ मुझे भी ले चलना। मुझे बचपन में ही ब्याह दी और ऊमरकोट ही छोड़ दी। हे साहिब एक संदेश मात्र देने में ही क्या आपको कागजों की कमी आ गई ? अर्थात् संदेश तो छोटे से कागज पर भेजा जा सकता है क्या उसकी भी कमी आपके यहाँ आ गई ? अब तो साथी ! हम याद करने वाली के डेरे समीप ही लगवाना।

गीत संख्या १०

विनायक

स्थायी--चालो हो गजानन जोशीड़ारे चालां
अंतरा--लगन्यां लिखाई वेगा आवां हो गजानन
कोटा री गादी पे नोबत बाजे
नोबत बाजे इंदरगढ़ गाजे
जरण जरण झालर बाजे हो गजानन
कोटा री गादी पे नोबत बाजे।

गीत परिचय

यह विवाह का गीत है। किसी भी शुभ काम अथवा उत्सव में गजानन (गणेश) की स्तुति की जाती है। विवाह के शुरू में गजानन का गीत शुरू करके विवाह का काम प्रारम्भ किया जाता है। यह गीत काफी थाट से मिश्रित होकर होली अंग से गाया जाता है।

ताल दीपचंदी (मात्रा १४)

स्थायी

निम	रेग	रे	सनि	म	नि	ध	सम	रेग	रे	नि	—	स	—
चालो	होऽ	ग	जाऽ	ऽ	न	न	जोशी	ड़ाऽ	रे	चा	ऽ	लां	ऽ
०			३				+			२			

अंतरा

सस	ग	प	मम	—	ग	गरे	सस	ग	प	म	—	ग	गरे
लग	न्यां	लि	खाई	ऽ	बे	गाऽ	आवां	हो	ग	ना	ऽ	न	नऽ
सा	रेग	रे	सनि	सनि	ध		स	रेग	रे	नि	—	स	—
को	टाऽ	री	गाऽ	ऽ	द्दी	पे	नो	वऽ	त	बा	ऽ	जे	ऽ
सा	रेग	रे	सानि	सनि	ध		सस	रेग	रे	नि	—	स	—
नो	वऽ	त	बाऽ	ऽ	जे	इं	दर	गऽ	ढ़	गा	ऽ	जे	ऽ
सस	ग	प	मम	—	ग	गरे	सस	ग	प	म	—	ग	गरे
जर	ण	ज	रण	ऽ	झा	लर	बाजे	हो	ग	जा	ऽ	नं	दऽ
स	रेग	रे	सनि	सनि	ध		स	रेग	रे	नि	—	स	—
को	टाऽ	री	गाऽ	ऽ	द्दी	पे	नो	वऽ	त	बा	ऽ	जे	ऽ
०			३				+			२			

गीत का अर्थ

चलो हे गजानन ! हम जोशी के चलें। लगन लिखा कर गजानन जल्दी आवो। कोटे की गद्दी पर नोवत बजती है। नोवत बजती है और इंदरगढ़ गरजता है, हिलता है, ध्वनित होता है। जरण जरण झालर बजती है। कोटे की गद्दी पर नोवत बजती है।

गीत संख्या ११

कलाळी

स्थायी—देनी ए बैरण म्हाने रँगजड़ दारू दे
मारा नोखीला रो सेलड़ो कीलालण ऊबो ने
कलाळी थारो रँगजड़ दारू दे.........देनी ए

दोहा

अंतरा—के मण गाल्या मउवा कीलालण, के मण सीळी खाँड ?
नो मण गाल्या मउवा कीलालण, दस मण सीळी खाँड ॥

कीलालण मृग लोचनी मद की गागर दे
केसी थण रो सायबो देसूँ लंक लुटाय ।
देनी ए थेंरण म्हाने रँगजड़ दारू दे

गीत परिचय

यह गीत भी राज-रजवाड़ों का गीत है। राजपूत राजाओं को प्रसन्न करने के निमित्त इस प्रकार के गीत गाये जाते थे। कलाळी राजस्थान का प्रसिद्ध गीत है। दूसरी कलाळी है 'चाँदड़ल्यो भँवरजी चढ़गो गिगनार, हाँजी भँवरजी कोई किरत्याँ झुक आई गढ़रै काँगरेजी म्हारा राज'। दूसरी की धुन भी बड़ी मतवाली है। प्रस्तुत कलाळी भैरवी पूर्विया अंग में है।

कलाळी ताल दीपचंदी मात्रा १४

स्थायी

पप	ध	ध	पप	म	ग	ग	सारे	सा	रे	गरे	ग	मा	रे
देनी	ण	थे	रण	ऽ	मा	ने	रँग	ज	ड़	दाऽ	ऽ	रू	ऽ
सा	—	—	—	—	—	—	सस	ग	ग	म	—	म	म
दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मारा	ने	नो	खी	ऽ	ला	रो
गग	म	म	मम	ग रे	—	स	पप	प	प	ध	धप	मम	मग
मेल	ड़ो	की	लाऽ	ऽल	ऽ	ण	ऊयो	ने	क	ला	लीऽ	थाऽ	रोऽ
सरे	स	रे	गरे	ग	स	रे	स	—	—	—	—	—	—
रंग	ज	ड़	दाऽ	ऽ	रू	ऽ	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०			२				+			३			

अंतरा

स	ग	ग	म	—	म	—	गग	म	म	मम	ग	रे	स
के	म	गा	गा	ऽ	ल्या	ऽ	मइ	वा	की	लाऽ	ऽ	ल	गा
प	प	प	प	—	प	—	धध	ध	धप	मम	म	गरे	ग
के	म	गा	सी	ऽ	ली	ऽ	ग्रॉड	श्रे	वेऽ	रगा	ऽ	माऽ	ने
सरे	स	रे	गरे	ग	स	रे	स	—	—	—	—	—	—
रंग	ज	ड़	दाऽ	ऽ	रू	ऽ	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०			३				+			२			

दूसरी पंक्ति भी इसी प्रकार बजेगी।

दोहा

पप	—	पप	पप	प	मप	धप	—	मम	म	म	गम	रेसा	—
कीला	ऽ	लगा	मृग	लो	चनी	ऽऽ	ऽ	मद	की	गा	गर	देऽ	ऽ
गम	पध	धप	—	प	प	पप	प	प	—	मप	धप	—	म
हाँऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	कें	सी	धगा	रो	सा	ऽ	यश्रो	ऽऽ	ऽ	दे
म	गम	गम	रेस	—	पप	धध	पप	म	ग	ग	सरे	स	रे
स्यूँ	लंऽ	कनु	टाऽ		दें नी	श्रे वे	रगा	ऽ	मा	ने	रंग	ज	ड़
गरे	ग	स	रे	स	—	—	—	—	—	—	—	—	—
दाऽ	ऽ	रू	ऽ	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

गीतार्थ

हे बैरिन ! हमको रँगीली शराब दे। हमारे नखराले का साथ बाहर खड़ा है। कलालिन हमको रँगीली दारू दे। कलालिन तुमने कितने मन महुआ डाला और कितने मन ठंडी चीनी डाली ? नौ मन महुआ डाला और दस मन खाँड डाली। कलालिन मृगलोचनी (मृग के से नेत्र वाली) शराब की गगरी (घड़ा) लाओ। धण (स्त्री) का साहब कहेगा कि लंक लुटा दूँगा अर्थात् धन लुटा दूँगा। हे बैरिन ! हमको रँगीली वारुणी दे।

राजपूती जीवन का इसमें चित्रण है। वीरता और मस्ती का इसमें सामंजस्य है।

गीत संख्या १२

काजळियो

काजळ भरियो कूपलो कई धरयो पलंग अध बीच, कोरो काजळियो।
सेजां में सवायो लागे रे कोरो काजळियो ॥

अंतरा—मैं थानें बरजूँ सायबा कई ऊनाळे मत आव
कोरो काजळियो······ ········

ऊनाळारी रुत बुरी कई माने गरमी होय
कोरो काजळियो, सेजाँ···

अंतरा—मैं थानें बरजूँ सायबा कई चौमासे मत आव
कोरो काजळियो·············

चौमासारी रुत बुरी कोई माने माछर खाय
कोरो काजळियो, सेजाँ में···

अंतरा—मुं थाने बरजूँ सायबा कोई सीयाळे भल आव
सीयालारी रुत प्यारी कामण कँठ लगाय
कोरो काजळियो, सेजाँ में···

गीत परिचय

'काजळिया' का गीत राजस्थान में लोकप्रिय है और कई भागों में गाया जाता है। विशेषतः होली के अवसर पर चंग पर गाते हुए यह गीत सुना गया है। यह वृन्दावनी सारंग है।

काजळियो मात्रा ८

स्थायी

प	पप	निनि	नि	निस	निरे	सा	निस
का	जळ	भरि	यो	कूऽ	ऽप	लो	कइ
रेरे	—सा	निस	रेस	रे	—	सा	सनि
धर्यो	ऽप	लंग	अइ	थां	च	को	रोऽ
निस	निरे	सा	—	प	पध	पन	म
काऽ	जळि	यो	ऽ	से	जांऽ	मेंऽ	म
रे	रे	नि	निस	रे	—	सा	सानि
या	यो	ला	गेऽ	रे	ऽ	को	रोऽ
×				२			
निस	निरे	सा	—	प	पप	निनि	नि
काऽ	जळि	यो	ऽ	मैं	थाने	वर	जुं
×							
निस	निरे	सा	निस	रे	रेसा	निस	रेसा
साऽ	ऽय	बा	कहे	ऊ	नाऽ	ळेऽ	मत
रे	—	सस	सनि	निसा	निरे	सा	—
आ	ऽ	थको	रोऽ	काऽ	जळि	यो	ऽ
प	प	नि	नि	निसा	निरे	सा	निसा

ऊ	ना	ळा	री	रूत	ऽत्तु	री	कई
रे	रेस	निस	रेस	रे	—	सा	सानि
मा	नेऽ	गर	मीऽ	हो	ऽ	को	रोऽ
निस	निरे	स	—				
काऽ	जळि	यो	ऽ				

शेष अंतरे इसी धुन में बजेंगे।

गीतार्थ

काजल का भरा हुआ कूंपला है, पलंग के अधबीच है। सेजों में काजल और भी श्रेष्ठ लगता है। हे साहब मैं तुम्हें रोकती हूँ, तुम गर्मियों की मौसम में मत आओ। गर्मियों की मौसम बुरी है, उसमें मुझे बड़ी गर्मी लगती है और उसके कारण मैं बड़ी व्याकुल रहती हूँ। हे साहब मैं तुम्हें रोकती हूँ तुम बरसात में मत आओ, बरसात की मौसम बुरी है। इसमें मुझे मच्छर खाते हैं। हे स्वामी मैं तुम्हें रोकती हूँ भले ही जाड़े की मौसम में आओ। सियाले की मौसम प्यारी है, कामिनी को कंठ लगाओ। गीत शृँगारिक है पर स्वाभाविकता और यथार्थ से पूर्ण है।

गीत संख्या १३

काळयो

काळवियो नणदबाई जल केरो जीव,
गोरे जाऊं, मांहिरे वण जाऊं रे
जल केरी माछली रे मारा राज

अंतरा—चालो नणदल बाई पाणी रे तळाव राज
कई किनरा रे दिला नं आवे राणो काळवो रे मारा राज
पहलो मेलो भावज स्वचारिणारी पाळ राज
मई ईडोंणी टंका री चंपकेरी भाळवी ओ मारा राज

चालो भावज जोशीड़ा रे हाट भावज म्हारी ओ राज
टीपणो थो वंचा दो कद घर आवसी ओ मारा राज
गिणजो भावज हरा पीपलड़ी रा पान राज
कांई इतरा रे दिना सूं आवे गोरी काछवा रे मारा राज
थारूं जारूं हरा पीपलीड़ा रा पान नणदल बाईसा ओ राज
कलपतड़ी में न्हाखूं पीसळ केरी कूंचली रे मारा राज

गीत परिचय

मारवाड़ की ओर यह गीत विशेष प्रचलित है। इसकी गायकी भी बड़ी मधुर है। अधिकतर यह राजा, रईसों और उमरावों की महफिलों में गाया जाता रहा है। यह गीत खम्भावती का अंग बतलाता है। यह खम्भावती रागनी से बना हुआ गीत है जिसमें उठाव का प्रारम्भिक अंग बिल्कुल दुर्गा का है।

काछवो, ताल कहरवा मात्रा ८

स्थायी

ग	गग	ग	मग	रे	रे	स	स
का	छाँव	यो	रेऽ	गु	द	वा	ई
—	रे	स	—	पध	मप	ध	प
ऽ	ज	ल	ऽ	केऽ	ऽऽ	ऽ	रो
ध	—	—	—	ग	मग	रे	स
जी	ऽ	ऽ	व	गो	रेऽ	जा	ऊं
—	ग	ग	—	(रे)	—	प	पम
ऽ	स	हि	ऽ	रे	ऽ	व	गाऽ
पध	ध	(प)	—	—	रेप	मम	—
जाऽ	ऊँ	रे	ऽ	ऽ	जल	केरी	ऽ

गरे	(ग)	—	—	|	स	स	सरे	ग
माऽ	ऽ	ऽ	ऽ	|	मा	छ	ळीऽ	ऽ
×				|	२			
रेग	पम	—	—	|	ग	रे	ग	स
रेऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	|	मा	ऽ	ऽ	रा
स	—	—	—	|	२			
रा	ऽ	ऽ	ज	|				
×				|				

अंतरा

ग	ग	—	मग	|	रे	रे	स	स
चा	लो	ऽ	नण	|	द	ल	बा	ई
—	रे	म	—	|	पध	मप	ध	प
ऽ	पा	णी	ऽ	|	रेऽ	ऽऽ	ऽ	त
ध	—	—	—	|	ग	ग	रे	स
ळा	ऽ	ऽ	व	|	रा	ज	कं	इ
—	गग	ग	—	|	रे	—	प	म
ऽ	चित	रा	ऽ	|	रे	ऽ	दि	ऽ
मप	धध	प	—	|	रे	रप	म	म
नांऽ	ऽऽ	सू	ऽ	|	आ	वेऽ	रा	णो
गरे	(ग)	—	—	|	स	स	सरे	गरे

का ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	का	छ	वोऽ	ऽऽ
रग	पम	—	—	ग	रे	ग	स
रे ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	मा	ऽ	ऽ	रा
स	—	—	—				
रा	ऽ	ऽ	ज				
x				२			

टिप्पणी—बाकी सब अंतरे इसी प्रकार बजेंगे।

गीतार्थ

काछवा नणद बाई जल का जीव है, साथिन! मैं जल की मछली बन जाऊं। हे नणद बाई पानी के तालाब को चलें, कितने ही दिनों से राणा काछवा आयेगा? हे भावज (भाई की स्त्री) सरवर की मेंड पर घड़ा रखो और ईंडोणी चंपे की डाली पर टांक दो। हे भावज जोशी की दुकान चलें और टीपणा (पञ्चांग) पढ़वायें। हे भावज! इन पीपल के पत्तों को गिनो, इतने दिनों से राणा काछवा आयेगा। हे नणद बाई! इन पीपल के पत्तों को जला दूं और पीपल के पेड़ को करवत (करौत) से कटा दूं। कछुए के चारों ओर मछलियां फिरा करती हैं। जब कछुआ पाल (मेंड) पर बैठ जाता है तब मछलियां उसके चारों ओर चक्कर काटती हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि कछुवा मछलियों को खाता नहीं है। मछली और कछुवे का मेल भी कहा जाता है।

गीत संख्या १४

माँड

स्थायी—केसरिया बालम आवो जी पधारो म्हारा राज।

दोहा—साजन तुम तो चातक हो, जानत हो सब रीत।
ऐसी सदा निभावजो, मासूं घटना प्रीत॥

प्रीतम पतियाँ ना लिखी, गये बहुत दिन बीत ।
यह किस गाँव की रीत है, मुख देखन की प्रीत ॥ .... केसरिया बालम

साजन साजन म्हैं करूँ, साजन जीव जड़ी ।
चुड़ला ऊपर माँडलूं, बांचूं घड़ी घड़ी ॥ ... केसरिया बालम

गीत परिचय

यह गीत मांड की गायकी का एक प्रकार है। मांड बहुधा राजा-महाराजाओं की सभा-महफिलों में सुनाई जाती थी। रियासतों के विलीनीकरण के बाद यह गायकी उपेक्षित हो गई है। इसके संरक्षण का प्रश्न गम्भीर है।

यह खमाज अंगी मांड है।

मांड, ताल दादरा, मात्रा ६

					गम
					केऽ
पध	पध निसं	—	निध	नि	धप
नरी	या ऽऽऽ	ऽ	आऽ	ल	मऽ
पध	पनि	धप	मग	रेग	स
आऽ	आंऽ	ऽऽ	नीऽ	ऽऽ	प
रे	म	--	प	धनि	धनि
भा	रो	ऽ	म्हा	राऽ	ऽऽ
प	---	—	मनि	धध	गम
रा	ऽ	ज	हाऽ	ऽऽ	केऽ
x			२		

दोहा

नि	निनि	निनि	नि	नि	निनि
सा	जन	तुम	तो	चा	तुर
धनि	संनि	—	सं	संसं	निध
हो॰	ऽऽ	ऽ	जा	नत	होऽ
निरें	सं	—	नि	नि	निनि
सब	री	त	गं	गी	मन्त्र
—	निनि	ध	निसं	नि	—
ऽ	निसा	ध	जोऽ	ऽ	ऽ
सं	सं	सं	निध	निसं	—
म्हां	सूं	घ	टेऽ	नाप्री	त

शेष अंतरे इसी प्रकार बजेंगे।

गीतार्थ

केसरिया पति आओ, पधारो, हमारे राज! साजन तुम चतुर हो, सब गीत जानते हो, इसी प्रकार मन्त्र सिखाना जिससे हमसे प्रीत नहीं घटे। हे प्रीतम! आपको गये हुए बहुत दिन हो गये, आपने कोई पत्र नहीं लिखा। 'मुंह देखे की प्रीत', यह किस गांव की रीति है? मैं तो साजन साजन करती हूँ, साजन मेरे लिये जड़ी (औषधि) हैं। मैं चूड़ले के ऊपर उनका नाम लिखूं और पल पल उसको पढ़ूँ।

गीत संख्या १५

पणिहारी

स्थाई

कुआजी खुदाया कुआ बावड़ी ए, पणिहारी जी रे लो, मिरगानेणी जी रे लो
कुआजी बंधाया नवाब म्हारा जी। कुआजी०

अंतरा

रतन कुवो मुख सांकड़ो ए पणिहारी जी रे लो जोला लेणी जी रे लो
लांबी लागे नेज, वाला जी ।
सुसरेजी खुदाया कुवा बावड़ी ए पणिहारी जी रे लो मिरगानेणी जी रे लो
सायबजी बंधायो तळाव, वाला जी ।
सोना रूपारो थारो बेवड़ो ए पणिहारी जी रे लो ऊजळदंती जी रे लो
नाजुकड़ी पणिहार वाला जी ।

गीत-परिचय

'पणिहारी' गीत राजस्थान का बहुत प्रसिद्ध गीत है। विशेषतः जब स्त्रियाँ पानी भरने जाती हैं तब गाया जाता है। पनघट पर भी स्त्री-समुदाय इसे गाता है। पनघट स्त्रियों का एक प्रकार का 'क्लब' है।

यह बहुत प्राचीन रागिनी रसवंती में गाया जाता है किन्तु वर्तमान में इस रागिनी का लोप होने से खमाच थाट का मारू राग बतलाया जाता है।

पणिहारी, ताल कहरवा, मात्रा ८

पप	प	—	प	प	प	ध	म
सुस	जी	S	खु	दा	या	कु	वा
प	—	—	पमं	नि	ध	प	म
बा	S	S	वऽ	ड़ी	ए	प	णि
ग	गरे	गप	म	ग	—	गप	म
हा	रीS	जीS	रे	लो	S	मिर	गा
ग	गरे	गप	म	ग	—	—	—
ने	णीS	जीS	रे	लो	S	S	S
गमग	म	—	म	रे	ग	म	ग
सुस	जी	S	सुँ	भा	S	गा	त

रे	—	—	ग	म	—	ग	रें
ला	ऽ	ऽ	व	आ	ऽ	ला	ऽ
x				रे			
सा	—	—	—				
जी	ऽ	ऽ	ऽ				
x							

अंतरा

प	प	प	प	प	—	ध	म
र	त	न	कु	वो	ऽ	सु	ख
प	—	—	पसं	नि	ध	प	म
मां	ऽ	ऽ	कऽ	डो	ए	प	गि
ग	गरें	गप	म	ग	—	म	मग
हा	रीऽ	जीः	रे	लो	ऽ	जो	लाऽ
रेंग	गरें	गप	म	ग	—	—	—
लेऽ	णीऽ	जीऽ	रे	लो	ऽ	ऽ	ऽ
सा	—	सा	सा	रे	ग	म	ग
ना	ऽ	जु	क	डी	ऽ	प	णी
रे	—	—	ग	म	—	ग	रे
हा	ऽ	ऽ	र	आ	ऽ	ला	ऽ
x				रे			
सा	—	—	—				
जी	ऽ	ऽ	ऽ				

शेष अंतरे इसी प्रकार बजेंगे।

ग	रेस	—	रेग	सस	—	स	स
सा	ऽऽ	ऽ	म्हाऽ	रारा	ऽ	म्हा	रा
—	रे	म	म	प	प	ध	ध
ऽ	थो	त	ह	ठी	ला	सि	र
पध	निसं	—	सं	सं	निध	—	पम
द्वाऽ	ऽऽ	ऽ	गु	ला	बीऽ	ऽ	मद
—	पध	—	पम	ग	रेस	रेग	सस
ऽ	पीऽ	ऽ	बीऽ	सा	ऽऽ	म्हाऽ	रारा
×				२			

दोहा

निनि	निनि	नि	नि	निनि	निसंरेरे	संनिधनी	—
मद	विन	से	ज	अलु	णीऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽ
संसं	सं	निध	नीरे	सं	—	—	निनि
कियो	ह	माऽ	रोऽ	मा	ऽ	न	मद
निनि	नि	निनि	ध	नीसं	नि	संसं	सं
पियां	से	मद	च	ढेऽ	ऽ	उप	जे
निध	नीरे	सां	—	सं	सं	नीध	—
दुऽ	णोऽ	ज्ञा	न	गु	ला	बीऽ	ऽ
पम	—	पध	पम	ग	रेस	—	रेग
मद	ऽ	पीऽ	वोऽ	सा	ऽऽ	ऽ	म्हाऽ

सस	—	सा	सा	—	रे	म	म
रारा	ऽ	म्हा	रा	ऽ	बो	त	ह
प	प	ध	ध	पध	निसं	—	सं
ठी	ला	सि	र	दाऽ	ऽऽ	ऽ	गु
सं	नीध	—	पम	—	पध	पम	ग
ला	बीऽ	ऽ	मद	ऽ	पीऽ	वोऽ	सा
रेस	रेग	सस	—				
ऽऽ	म्हाऽ	रारा	ऽ				

टिप्पणी—शेष दोहे इसी प्रकार बजेंगे।

अर्थ

हे हमारे स्वामी! गुलाबी शराब पीओ। हमारे बहुत हठीले सरदार। गुलाबी मद पीओ। मद बिना सेज फीकी है, आपने हमारा मान किया, मद पीने से नशा चढ़ता है और दूना ज्ञान पैदा होता है। हे कामिनी! शराब के बिना सुन, हमसे रहा नहीं जाता। तुम्हारा शराब बड़ा तेज लगता है, मुझे प्याला मत पिलाओ। सेजों में शराब सुहावनी लगती है और सभा में मीठी जबान (मधुर वचन) अच्छी लगती है। बाग तो हरा भरा ही सुहावना लगता है और फोजों के बीच निशान (झंडा, ध्वजा) अच्छा लगता है। हे हमारे सुन्दर और आदरणीय! गुलाबी मद पीओ।

गीत में शृंगारिकता और विलासिता का चित्रण है पर साथ ही वीरता को भी छोड़ा नहीं गया है।

गीत संख्या १७

माँड

स्थायी—रंग माणो रंग माणो सा मिजलस रा माजी रंग माणो म्हारा राज।

अंतरा—बाबल के घर हस्ती घणेरा, बाबल के घर घोड़।

वादीला जैसा कोनी हो, साइना जैसा कोनी हो

आज मोरा साजन मिलिया, डोडी मिजमानी हो राज।
राय आँगण विच गळीजे कसुंबो पीवण रे मस आजो राज ॥
पधारो सा।
आज मोरा साजन मिलिया डोडी मिजमानी हो राज।
राय आँगण विच बाग लगावूं, सैल करण मिस आजो राज ॥
पधारो हो।
आज मोरा साजन मिलिया, डोडी मिजमानी हो राज।
राय आँगण विच हौद भरावूं जीलण रे मिस आजो हो राज ॥
पधारो सा।
आज मोरा साजन मिलिया डोडी मिजमानी।

गीत परिचय

यह गायन भी रजवाड़ों की महफिल का है। गीत में काव्य और संगीत का सामंजस्य मणिकांचन का संयोग है। यह मांड मेवाड़ी है।

ताल कहरवा, मात्रा ८ स्थायी

							मंमं
							रंग
नि	धप	—	धनि	ध	धनि	धप	निसं
सा	गोऽ	ऽ	रंग	सा	गोऽ	माऽ	निज
निसं	निध	पम	ग	मेस	सस	ग	—
लम	राऽ	आ	जी	ऽऽ	रंग	मा	ऽ
गप	—	पनी	धनि	प	—	—	मंस
गोऽ	ऽ	ल्हाऽ	आ	रा	ऽ	ज	रंग
x				२			

अंतरा

ग	—	प	प	पधनि	पध	निसं	निसं
बा	ऽ	ग	ल	केऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	धर

—	नि	ध	प	पनि	धनि	प	—
ऽ	इ	स्ती	घ	णेऽ	ऽऽ	रा	ऽ
ध	—	ध	ध	पम	—	—	पध
ग्रा	ऽ	व	ल	केऽ	ऽ	ऽ	घर
प	—	—	ध	प	म	—	पध
चो	ऽ	ड़	या	दी	ला	ऽ	जैसा
x				२			

प	प	प	ध	प	म	—	पध
फो	नी	हो	सा	ड़	ना	ऽ	जैसा
प	प	प	—	रे	म	म	म
फो	नी	हो	ऽ	आ	ज	मो	रा
पध	—	प	म	ग	मग	रे	—
नाऽ	ऽ	ज	न	नि	लिऽ	या	—
—	मरे	म	म	प	—	ध	म
ऽ	सोऽ	नि	ज	मा	ऽ	नी	[illegible]
x				२			
प	—	—	—				
रा	ऽ	ऽ	ऽ				
x							

[illegible]

गीतार्थ

सभा के मुखिया! आप आनन्द करें। पिताजी के घर बहुत से हाथी और घोड़े हैं किन्तु आप हठीले जैसा कोई भी नहीं है अर्थात आपकी तुलना में यह ऐश्वर्य कुछ भी नहीं है, आज मेरा मन मिल गया है, बड़ा आतिथ्य है। श्रेष्ठ आँगन के बीच अफीम (अमल) गल रही है, पीने के मिस आना राज! पधारिये। आज मेरे प्रीतम मिल गये, बड़ा आतिथ्य है। श्रेष्ठ आँगन के बीच में हौद (हौज) खुदाऊँ, तो नहाने के बहाने आना। आँगन के बीच बाग लगाऊँ तो सैर करने के बहाने आना। काव्य की दृष्टि से इसकी पंक्तियाँ हृदयस्पर्शी हैं।

गीत-संख्या १८

माँड

रो नी रातड़ली रे म्हारा मीठा मारूजी रो नी रातड़ली
रो तो रयावुँ लारली महाराज

चढ़ताँ बाजरिया री कोर—म्हारा मीठा मारू
रो तो सँजोवुँ दिवलो बादीला

चढ़ता चूनड़ी रो चाँदरे—म्हारा हंजा मारू
रो तो ओढ़ूँ चूँदड़ी मारूजा

चढ़ता दिवली रो चौर रे—थर रा दिवला रो नी।
रो तो आदूँ काजल बादीला

चढ़ता दुबारा री डोडी छाके—म्हारा मीठा

गीत परिचय

राजा महाराजाओं की महफिलों के गीत विकसित और उत्कृष्ट लोकसंगीत के नमूने हैं। यह माँड मेवाड़ी अंग का होते हुए भी देश अंग से गाया गया है। अतएव यह देश मिश्रित माँड है।

ताल दादरा मात्रा ६

स्थायी

प	प	म	मप	प	प
रो	नी	ऽ	राऽ	त	ड़

म	मप	ग	स	नि	रे
रो	नीऽ	ऽ	रा	त	ड़
स	—	—	—	—	—
ली	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×			०		

शेष अंतरे इसी प्रकार बजेंगे

गीतार्थ

प्रिय स्वामी ! रात्रि को रहो। यदि आप रहें तो मैं लापसी (मीठा दलिया, खाद्य) रँधावूँ महाराज ! यदि चढें (जायें) तो बाजरे का खीचड़ा। रहो तो दीपक जलाऊँ, चढो तो पूनम (पूर्णिमा) का चाँद, हे मेरे प्रिय पति ! बातें करेंगे। रहो तो चूँदड़ी ओढूँ, बराबर के (उम्र, ऊँचाई आदि में) चढ़ते समय दक्षिण का चीर, रहो तो घर के दीपक, रात में रहो। रहो तो बकरा काटूँ और चढते समय तेज शराब। जिसको आधी आप पियेंगे और आधी मैं। मेरे मीठे पति रात भर रहो ना। इसमें राजपूती जीवन का चित्रण है।

गीत संख्या १६

कांगसियो

म्हारा छैल भंवर रो काँगसियो, पणिहाराँ ले गई रे
पणिहारां ले गई रे, मारी सोकड़ियां ले गई रे....म्हारा छैल०

अंतरा—डोड़ मोहर रो काँगसियों मैं हटवाड़ा सै लाई रे
दाँते दाँते मोती जड़िया अद बिच हीरा जड़िया रे....पणिहाराँ०

मारा आलीजा छैल रो काँगसियो, पणिहाराँ ले गई रे
कठे छैला तू न्हायो धोयो, कठे पटियाँ पाड़ी रे
बागां मैं नायो वगीची मैं नायो,
सेजां मैं मूछ मरोड़ी रे ....पणिहाराँ०

पाँच गाँव रा पंच बुलाइ लूँ, चौड़े न्याव कराइ लूँ रे
काँगसिये रे कारणे, मारी छोरी री सोगन खाइ जाऊँ रे

स	स	सं	संनि	ध	ध	पप	म
दाँ	ते	दाँ	तेऽ	मो	ती	जड़ि	या
मप	पप	प	पध	मप	पध	ध	धप
अध	बिच	ही	राऽ	जड़ि	याऽ	रे	पणि
मप	पम	पध	पम	म	—	—	सस
हाँऽ	र्याँऽ	लेऽ	गई	रे	ऽ	ऽ	म्हारा
×				२			

टिप्पणी—शेष अंतरे इसी धुन में बजेंगे।

गातार्थ

हमारे छैल भँवर का काँगसिया पणिहारियाँ ले गई रे। मेरी सौक (दूसरी पत्नी) ले गई। डेढ़ मोहर का काँगसिया—मैं हटवाड़े से लाई थी। उसके दाँत दाँत में मोती जड़े हुए थे और उसके अधबीच में हीरे जड़े हुए थे। हे छैला! तू कहाँ नहाया, कहाँ वस्त्र धोये और कहाँ तूने पट्टे (बाल) बनाये। मैं बागों में नहाया था और बगीची में नहाया, सेजों में मैंने मूँछ मरोड़ी (बल दिये)। पाँच गाँवों के पंच बुला लूंगी, चौड़े न्याय करावूँगी, काँगसिये (कंघे) के लिये मैं अपनी बच्ची की कसम खा जाऊँ। मेरे छैल भँवर का कंघा पनिहारियाँ ले गई।

गीत सख्या २०

पीपली

स्थायी—बाय चाल्या छा भँवरजी पीपली जी
हाँजी ढोला, हो गई घेर घुमेर
बैठण की रुत चाल्या चाकरी जी
ए जी म्हारी लाल नणद रा ओ वीर
पिया की पियारी नैं सागैं ले चलो जी
परण चढ्या छा भंवर जी गोरड़ीजी
हाँजी ढोला हो गई जोध जवान
बिलसण की रुत चाल्या चाकरीजी

ओ जी म्हारी सास सपूती रा पूत
मत ना सिधारो पुरब की चाकरी जी
कातूं मोहर मोहर रो तार
रोक रुपैयो भँवरजी मैं बणूँ जी
हाँजी ढोला बण ज्याऊँ पीली-पीली म्होर
भीड़ पड़ै जद भँवर जी बरत ल्यो जी
हाँजी म्हारा बादीला भरतार
पियाजी पियारी नैं सागै ले चलो जी
कदै न ल्याया भंवरजी सीरणी जी
हाँजी ढोला कदै नैं करी मनुवार
कदे ए न पूछी मन री वारता जी
हाँजी म्हारी सास सपूतीरा पूत
मत ना सिधारो पुरब की चाकरी जी

गीत परिचय

यह वर्षा ऋतु का गीत है। रेगिस्तानी इलाकों में, विशेषतः शेखावाटी, बीकानेर तथा मारवाड़ के कुछ भागों में मोहल्ले-मोहल्ले की स्त्रियों के झुँड द्वारा गाया जाता है। यह तीज के त्यौहार के कुछ दिन पूर्व से गाया जाता है। इसके स्वर देश राग के हैं। रेगिस्तानी इलाके के सावण के महीनें का यह स्त्रियों का गीत है किन्तु इस गीत का साहित्यिक महत्त्व पत्रों में प्रकाशित हो जाने से इसकी प्रसिद्धि बहुत बढ़ी हुई है। पीपली की रेकार्ड भी भरी जा चुकी है।

ताल कहरवा, मात्रा ८

धस	सस	सम	मग	सरे	सरेमग	रे	--
बाऽ	य च	ल्याऽ	छा भं	वर	जीऽऽऽ	ऽ	ऽ
रे	रेरे	सरे	पप	मग	रेम	गरे	गरे
पी	पळी	हांजी	ढोला	होऽ	गइ	घेऽ	र घु
स	--	स	--	धस	सस	सम	मग
मे	ऽ	र	ऽ	बैऽ	ठण	कीऽ	रुत

सरे	सरेमग	रे	—	रे	रेरे	सरे	पप
चाऽ	ल्याऽऽ	ऽ	ऽ	चा	करी	एजी	म्हारी
मग	रेम	गरे	गरे	सा	—	सा	—
लाऽ	ल न	णद	रा ओ	वी	ऽ	र	ऽ
धस	सस	सम	मग	सरे	मग	रेग	—
पिया	की पि	याऽ	रीनें	साऽ	गेऽ	ऽले	ऽ
×				२			
रेस	—	—	—				
चलो	ऽ	ऽ	ऽ				
×							

गीतार्थ

हे पति ! आप पीपली बो कर चले थे, हे ढोला ! वह घेर घुमेर हो गई है। उसकी छाया का आनंद लेने का जब समय आया, उसके नीचे बैठने के समय तुम नौकरी पर चल पड़े। हमारी लाल नणद के भाई ! पिया की पियारी अर्थात् मुझे भी साथ ले चलो। किशोर अथवा कुमार अवस्था में जब मैं छोटी थी तब तुमने विवाह किया था, अब मैं पूर्ण यौवन की अवस्था को प्राप्त हो गई हूँ, ऐसे समय में तुम चले। विलास का ठीक समय जब आया तब तुम चल पड़े। भँवरजी मैं सूत कात रुपया कमा लेती हूँ, हे ढोला ! मैं पीली पीली सोने की मोहर बन जाऊँ, जब तुम्हारे में आर्थिक विपत्ति पड़े तब उसे खर्च कर लेना, हे हमारे हठीले भरतार (स्वामी) आपकी प्यारी को ले चलो। हे भँवरजी ! कभी भी आर मिठाई नहीं लाये और कभी भी आपने मेरी मनुहार नहीं की और न कभी मेरे मन की बात ही पूछी। हे हमारी सपूती सास के पुत्र ! पूरब की चाकरी मत जाओ। हे मेरी सेजों के शृंगार ! पूरब की चाकरी के लिये प्रस्थान न करो।

साहित्यिक दृष्टि से पीपली के गीत ने अच्छी ख्याति पाई है। रेगिस्तानी इलाके का यह एक लोकप्रिय गीत है।